संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

॥ ऋषि प्रसाद ॥

र्ष : १०
क : ९०
न २०००

हिन्दी

पूज्यपाद
संत श्री आसारामजी बापू

आँखें लखे हैं जिस ईश द्वारा, सोई बना ले निज नेत्र तारा।
जावें जहाँ नेत्र निहार सोई, दूजा कहीं भी मत देख कोई ॥

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १०
अंक : ९०
९ जून २०००
सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा
मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)

विदेशों में

(१) वार्षिक : US $ 25
(२) पंचवार्षिक : US $ 100
(३) आजीवन : US $ 250

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'ऋषि प्रसाद' रोज सुबह ७.३० से ८

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

संत कबीर : एक अलौकिक व्यक्तित्व

[कबीर जयंती : १६ जून २०००]

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

संत कबीरजी के अलौकिक व्यक्तित्व के बारे में 'भक्तमाल' के रचयिता नाभादासजी ने कहा है :

कबीर कानि राखि नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी ।
भक्ति विमुख जो धरम ताहि अधरम करि गायो ।
जोग जग्य व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो ॥
हिन्दू तुरक प्रमान रमैनी सबदी साखी ।
पच्छपात नहीं, बचन सबहिं के हित की भाखी ॥
आरूढ़ दसा है जगत पर मुख देखी नाहिन भनी ।
कबीर कानि राखि नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी ॥

(भक्तमाल, नाभादास, छप्पय : ६०)

पक्षपातरहित होकर हिन्दू-मुसलमान दोनों को ही खरी-खरी सुना देनेवाले फिर भी दोनों के पूज्य संत कबीरजी के अलौकिक व्यक्तित्व की तरह ही उनका प्रागट्य भी अद्‌भुत ही रहा । इनके जन्म के संबंध में कई प्रकार की किंवदन्तियाँ हैं ।

कहते हैं कि जगद्‌गुरु रामानंद स्वामी के आशीर्वाद से काशी की एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से ये उत्पन्न हुए । लज्जा के मारे वह ब्राह्मणी नवजात शिशु को लहरतारा के ताल के पास छोड़ आयी । नीरू नाम का एक जुलाहा उस बालक को अपने घर उठा लाया और उसीने उस बालक का पालन-पोषण किया । वही बालक आगे चलकर संत कबीर के रूप में प्रसिद्ध हुआ ।

कुछ कबीरपन्थी महानुभावों की मान्यता है कि कबीरजी का आविर्भाव काशी के लहरतारा के तालाब में कमल के अति मनोहर पुष्प के ऊपर बालकरूप में हुआ था ।

एक प्राचीन ग्रंथ में लिखा है कि किसी महान् योगी के औरस और प्रतीचि नामक देवांगना के गर्भ से भक्तराज प्रह्लाद ही कबीरजी के रूप में संवत् १४५५ ज्येष्ठ शुक्ल १५ को प्रगट हुए थे । प्रतीचि ने उन्हें कमल के पत्ते पर रखकर लहरतारा के तालाब में तैरा दिया था और नीरू-नीमा नाम के जुलाहे दम्पति जब तक आकर उस बालक को नहीं ले गये, तब तक प्रतीचि उनकी रक्षा करती रही ।

अस्तु, जो भी हो किन्तु इस अलबेले व्यक्तित्व से न केवल तत्कालीन समाज ही काफी लाभान्वित हुआ वरन् आज भी उनके पावन वचनों से पूरा विश्व लाभान्वित हो रहा है । संत-सुवास होती ही ऐसी है जो कभी मिटती नहीं ।

पाहन पूजे हरि मिलै, तौ मैं पूजूँ पहार ।
ता तें तो चक्की भली, पीसि खाये संसार ॥

ऐसा कहकर हिन्दुओं को एवं

काँकर पाथर जोरि के, मसजिद लई चुनाय ।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय ॥

मुसलमानों को ऐसा कहकर खरी-खरी सुनानेवाले संत कबीर को माननेवाले हिन्दू और मुसलमान दोनों ही रहे, यह क्या कम आश्चर्यजनक बात है ? वे इतने प्रभावशाली थे कि कई बार उनके विरोधी तक उनके सामने मंत्रमुग्ध हो शांत हो जाते थे । अद्‌भुत ईश्वरीय अनुभव के धनी महापुरुष को अभिमान छू कैसे सकता है ?

✻

कबीरा इह जग आय के, बहुत से कीन्हें मीत ।
जिन दिल बाँधा एक से, वे सोयें निश्चिंत ॥
कबीर माँगे माँगना, प्रभु दीजे मोहे दोय ।
संत-समागम हरिकथा, मो घर निशदिन होय ॥

✻

अहंकार का स्वरूप

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में आता है :

'संसार में जितने भी दुःख हैं वे सब अहंकार के कारण ही उत्पन्न होते हैं । अहंकार के कारण ही जीव का जन्म-मरण होता है और अहंकार के कारण ही राग-द्वेष होता है । अहंकार के त्याग से सब दुःखों का त्याग हो जाता है एवं जीव को परम पद की प्राप्ति होती है । अतः अहंकार का त्याग करना चाहिए ।'

वशिष्ठजी महाराज के ऐसा कहने पर रामजी ने पूछा : ''यदि अहंकार का त्याग कर देंगे तो खायेंगे-पियेंगे और जियेंगे कैसे ? मनुष्य में 'मैं हूँ' का भाव है तभी तो उसमें कर्त्तव्य-पालन की आकांक्षा होती है, जीवन में कुछ माँग होती है, कुछ भूतकाल की चिंता होती है और भविष्यकाल के लिये चिंतन होता है । यदि यह अहंकार ही चला जाये तो वह खायेगा-पियेगा और जियेगा कैसे ?''

वशिष्ठजी महाराज ने कहा : ''हे रामजी ! अहंकार के तीन स्वरूप होते हैं : (१) क्षुद्र (स्थूल) अहं (२) मध्यम (सूक्ष्म) अहं (३) वास्तविक अहं ।

क्षुद्र माने तुच्छ । स्थूल शरीर के साथ जुड़कर मनुष्य जो बोलता है उसे क्षुद्र अहं कहा जाता है । 'मैं फलानी जाति का हूँ... मेरी इतनी उम्र है... मैं यह कर सकता हूँ...' यह अहं जनसाधारण में, अल्प मति के लोगों में भी होता है एवं विद्वानों में भी होता है ।

शरीर में है ही क्या ? कुछ सीधी हड्डियाँ, कुछ आड़ी हड्डियाँ, मांस, रक्त, वात, पित्त, कफ, मल-मूत्र, थूक आदि और ऊपर से चमड़े का आवरण... फिर भी क्षुद्र अहं के साथ जुड़कर मनुष्य बोलता है कि 'मैं मोटा हूँ... मैं पतला हूँ... मैं काला हूँ... मैं गोरा हूँ... मैं ब्राह्मण हूँ... मैं क्षत्रिय हूँ... मैं फलाने गाँव का हूँ... मैं फलाने देश का हूँ...' इस शरीर के साथ जुड़कर बहनेवाला जो स्फुरण है उसीको क्षुद्र अहं कहते हैं । अहं ही सर्व दुःखों की जड़ है ।

कोई कितना ही बुद्धिमान् हो, विद्वान् हो, अपने को अक्लवाला समझता हो लेकिन शरीर के साथ जब तक अहं जुड़ा रहेगा तब तक संसार के भोगों की वासनाएँ बनी रहेंगी और वासना ही तो जीव के जन्म-मरण का कारण है ।

क्षुद्र अहं के साथ जुड़ा हुआ जीव वासना के अनुसार ही काम करता रहता है । उसका मन विषय-भोगों में ही भटकता रहता है । इस अहंकार ने त्रिलोकी को वासना के जाल में बाँध रखा है । क्षुद्र अहंकारवाला मनुष्य मंदिर में रहते हुए भी बंधन में है और मस्जिद में रहते हुए भी बंधन में है । दुकान में रहते हुए भी बंधन में है और घर में रहते हुए भी बंधन में है । एक ऊँचे पद पर बैठा हुआ मनुष्य भी अपने को स्वतंत्र नहीं मान सकता ।

यदि कोई स्वस्थ एवं धनवान् मनुष्य कहे कि 'मेरा कोई कर्त्तव्य नहीं है, मुझे नौकरी-धंधे की कोई चिंता नहीं है क्योंकि बैंक में मेरा 'फिक्स डिपॉज़िट' (स्थायी जमा-पूँजी) है । हर महीने ब्याज आता है । मैं आराम से खाता-पीता हूँ । मैं बड़ा सुखी हूँ ।' ...लेकिन उस व्यक्ति की गहराई में देखोगे तो वह भी अंदर से सुखी नहीं मिलेगा । 'मैं सुखी हूँ...' वह इस शरीररूपी ढाँचे को लेकर बोलता है । उस ढाँचे को अगर जरा-सी गर्मी लगे या जरा-सा मच्छर काट ले तो वह दुःखी हो जायेगा क्योंकि क्षुद्र अहं में बैठा है बेचारा ।

इस क्षुद्र अहं ने सारे विश्व को ढाँक रखा है । कोई-कोई विरला होता है जो इस क्षुद्र अहं से हटकर मध्यम अहं में आता है । मध्यम अहं अर्थात् सूक्ष्म अहं । जप-तप, सुमिरन, पूजा-अर्चना, सत्संग,

सेवा आदि करने से समझ में आ जाता है कि 'जीवात्मा अमर है और शरीर नश्वर। यह शरीर पहले नहीं था, बाद में भी नहीं रहेगा और अभी-भी नहीं की ओर जा रहा है। मौत शरीर की होगी। मरने के बाद हम भगवान के पास जायेंगे।'

मध्यम अहंवाले को यह पक्का हो जाता है कि शरीर यहीं पड़ा रहेगा। शरीर भगवान के पास नहीं जायेगा लेकिन सूक्ष्म शरीर में अहं होता है कि हम भगवान के पास जायेंगे। सूक्ष्म शरीर में अहं होने से भोग की वासना शांत होती है लेकिन विचारों में अपनी बात मनाने की वासना बनी रहती है।

स्थूल शरीर में अहं होने से मनुष्य संसार की भोग-वासना में जकड़ा रहता है और सूक्ष्म शरीर में अहं होने से लोक-लोकांतर की इच्छा में उलझा रहता है। 'अपना प्रिय भगवान अभी नहीं मिला, इसलिये मरने के बाद किसी लोक-लोकांतर में मिलेगा...' सूक्ष्म अहंवाले का ऐसा भाव होता है। क्षुद्र अहंवाले से सूक्ष्म अहंवाला अच्छा है क्योंकि क्षुद्र (स्थूल) अहंवाला शरीर में अहंता होने के कारण केवल भोग-वासना की पूर्ति में ही लगा रहता है जबकि सूक्ष्म अहंवाला भगवान की प्राप्ति के लिये जप-तप-यज्ञादि करने में लग जाता है। उसको कम परिश्रम करने पर भी ज्यादा सुख मिलता है।

सूक्ष्म अहं में जीनेवाला व्यक्ति क्रियाजन्य सुख से ऊपर उठता है एवं भावजन्य सुख से सुखी होने लगता है। क्रियाजन्य सुख में परिश्रम ज्यादा होता है और सुख कम मिलता है। भावजन्य सुख में परिश्रम कम होता है और सुख ज्यादा मिलता है, भावना का सुख मिलता है।

भावना का सुख भारत के ऋषि-मुनियों की देन है। भगवद्भक्ति से भाव को विकसित करके, ईश्वर और गुरु की शरण लेने से स्थूल अहं लीन होता है। वेदान्त का श्रवण करके उसका मनन एवं निदिध्यासन करने से सूक्ष्म अहं बाधित हो जाता है एवं इन दोनों को सत्ता देनेवाला जो वास्तविक अहं है, वह प्रकट हो जाता है। उसीको कहा जाता है- **अहं ब्रह्मास्मि।** वही जीव का वास्तविक स्वरूप है। उस वास्तविक स्वरूप को पाये हुए किन्हीं महापुरुष ने ही कहा है :

जन्म-मृत्यु मेरे धर्म नहीं हैं।
पाप-पुण्य कुछ कर्म नहीं हैं॥
अज निर्लेपीरूप, कोई कोई जाने रे...

वह चैतन्य परमात्मा अजर-अमर है, निर्लेप है और सबका वास्तविक स्वरूप है। ऐसे उस वास्तविक स्वरूप को कोई विरला ही जानता है।

'मैं फलाना भाई हूँ...' यह स्थूल अहं है। 'मैं भगवान का भक्त हूँ...' यह सूक्ष्म अहं है। जहाँ से 'मैं' स्फुरित होता है वह वास्तविक अहं है। उस वास्तविक अहं का, शुद्ध अहं का जब तक बोध नहीं होता तब तक जीव बेचारा परिस्थितिजन्य सुख-दुःख, क्रियाजन्य सुख-दुःख एवं भावजन्य सुख-दुःख में धक्के खाता रहता है।

जब तक स्थूल और सूक्ष्म अहं में जीवन होगा तब तक चाहे कितना भी ऊँचा जीवन होगा, उसमें शुद्ध सुख का पता नहीं चलेगा। निर्धनों के आगे धनवान् अपनेको सुखी मानता है, निर्बलों के आगे बलवान् अपनेको सुखी मानता है, अल्प मतिवालों के आगे विद्वान् अपनेको सुखी मानता है लेकिन इस स्थूल और सूक्ष्म अहं का सुख वास्तविक सुख नहीं है। ऐसे कई सुख आते हैं और चले जाते हैं। 'जब मौत आकर सामने खड़ी होती है तब स्थूल और सूक्ष्म अहं से जुड़कर जो भी किया, वह सब छोड़कर जाना पड़ता है...' यह सोचकर मनुष्य बेचारा दुःखी हो जाता है क्योंकि उसने अभी तक अपने वास्तविक 'मैं' को नहीं जाना है।

जब तक वास्तविक 'मैं' का पता नहीं चलता तब तक वह चाहे दुनिया की नजर में बड़ा प्रसिद्ध व्यक्ति हो, बड़ा सुंदर व्यक्ति हो, बड़ा दाता हो, बड़ा बुद्धिमान् हो लेकिन तत्त्वज्ञान की दुनिया में वह मूढ़ ही है। जिसने उस वास्तविक 'मैं' को जान लिया वह दुनिया की तो क्या, देवताओं- यक्षों-गंधर्वों की ही नहीं अपितु ब्रह्मा-विष्णु-महेश की नजरों में भी

आदरणीय हो जाता है।

वास्तविक 'मैं' में जागने के लिये जब तक ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु की छत्रछाया नहीं मिलती, तब तक अनेक प्रकार की साधनाएँ करनी पड़ती हैं। जब ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु मिल जाते हैं और उनके बताये हुए मार्ग पर साधक चल पड़ता है, उनके निर्देशानुसार ब्रह्मचिंतन एवं ब्रह्मज्ञान के अभ्यास में लग जाता है तो उसकी सारी साधनाएँ पूरी हो जाती हैं। फिर उसे अलग से किसी साधना की जरूरत नहीं पड़ती है। साधक अपने लाखों जन्मों के संस्कार एक ही जन्म में मिटा सकता है। अगर मनुष्य जन्म पाकर भी वह सावधान न हो तो लाखों जन्म लेने के संस्कार भर भी सकता है।

यदि जीवन में सावधानी नहीं है तो जिससे सुख मिलेगा उसके प्रति राग हो जायेगा और जिससे दुःख मिलेगा उसके प्रति द्वेष हो जायेगा। इससे अनजाने ही चित्त में संस्कार जमा होते जायेंगे एवं वे ही संस्कार जन्म-मरण का कारण बन जायेंगे। वैर लेने के लिये किसीका शत्रु होकर एवं प्रेम (राग) के कारण किसीका पुत्र, मित्र, भाई आदि बनकर जन्म लेना पड़ेगा। जब तक वास्तविक 'मैं' का ज्ञान नहीं होगा तब तक यह क्रम चलता ही रहेगा। वास्तविक 'मैं' का ज्ञान होने पर राग-द्वेष बाधित हो जाते हैं और जन्म-मरण का चक्र सदा के लिये समाप्त हो जाता है।

जितना-जितना मनुष्य स्थूल अहं को छोड़कर सूक्ष्म अहं में जाता है उतनी-उतनी उसकी गुरु या भगवान को समझने की शक्ति बढ़ती है। ब्रह्मवेत्ता गुरु द्वारा बताये गये निर्देशों का सच्चाई एवं तत्परता से पालन करने पर वह सूक्ष्म अहं को त्यागकर वास्तविक 'अहं' को जानने में भी सक्षम हो जाता है।

आपका वास्तविक 'मैं' ही आपकी असलियत है। उस वास्तविक 'मैं' में अगर आप जाग गये तो आपका बेड़ा पार हो जायेगा। फिर तो आपकी मीठी नज़र जिन पर पड़ेगी वे भी निहाल हो जायेंगे। आपके दीदार करनेवालों को भी बहुत लाभ होगा, आप ऐसे महान् हो जाओगे !

*

ध्यान का रहस्य

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सतसंग-प्रवचन से ✻

ध्यान माने क्या ? हमारा मन नेत्रों के द्वारा जगत में जाता है, सबको निहारता है तब जाग्रतावस्था होती है, 'हिता' नाम की नाड़ी में निहारता है तब स्वप्नावस्था होती है और जब हृदय में विश्रांति करता है तब सुषुप्तावस्था होती है। ध्यानावस्था न जाग्रतावस्था है, न स्वप्नावस्था है और न सुषुप्तावस्था है वरन् ध्यान चित्त की सूक्ष्म वृत्ति का नाम है। सूक्ष्म वृत्ति हो जाने पर शरीर में से 'मैं पना' हट जाता है।

इसका मतलब यह नहीं कि जब ध्यान करते हो तब जड़ हो जाते हो या तुमको कुछ पता नहीं चलता। तुम नाचते हो, गाते हो, रोते हो... उसका ऊपर-ऊपर से पता नहीं चलता है लेकिन अंदर से सब पता चलता है। तुम्हारी ताल से विपरीत कोई ताल देता है तो ध्यान का ताल टूट भी जाता है। ध्यान करनेवाला ध्यानावस्था में जड़ नहीं होता है, बेवकूफ नहीं रहता है वरन् उसकी चित्त की वृत्ति सूक्ष्म और आनंद-प्रेमप्रधान हो जाती है। वही वृत्ति जब जाग्रत में आ जाती है तो जाग्रत के व्यवहार में भी ठीक से सँभलकर रहती है।

परमात्म-ध्यान से अंतरात्मा की शक्ति जागृत होती है एवं स्मृतिशक्ति बढ़ती है। ध्यान करने से दुर्गुण दूर होते हैं एवं सद्गुण बढ़ते हैं। ध्यान करने से पाप नष्ट होते हैं, निर्भयता बढ़ने लगती है, परमात्मा का सुख उभरता है, परमात्मा का ज्ञान निखरता है।

ध्यान करने से परमात्मा का आनंद आता है और ध्यान दृढ़ होने से परमात्मा स्वयं प्रगट हो जाते हैं।

चंचल-दुर्बल रहने से भगवान नहीं मिलते, न ही बड़े-छोटे होने से भगवान मिलते हैं। चिंता करने से भी भगवान नहीं मिलते, न ही 'हा-हा... ही-ही...' करने से भगवान मिलते हैं। भगवान तो मिलते हैं जप-ध्यान से, भक्ति-ज्ञान से।

हम जैसे रोज-रोज खाते हैं, रोज-रोज सोते-उठते हैं, रोज-रोज जगत का व्यवहार करते हैं वैसे ही रोज-रोज परमात्मा का ध्यान भी करना चाहिए। रोज-रोज परमात्मा का जप-सुमिरन करना चाहिए। रोज-रोज सत्संग-स्वाध्याय करना चाहिए एवं अपने-आपको अंतर्मुख करने का यत्न करना चाहिए।

कई लोग ध्यान के समय आँखें खोलकर इधर-उधर देखते रहते हैं, वे उस समय चूक जाते हैं। आँखें खोलकर इधर-उधर निहारने से वृत्ति बहिर्मुख रहती है।

जिसकी वृत्ति अंतर्मुख हो गयी है उसको जप से क्या लेना-देना ? जिसकी वृत्ति शांत हो गयी है, उसको स्वाध्याय के लिए भी वृत्ति को बाहर लाने की जरूरत नहीं है। स्वाध्याय और जप, वृत्ति को अंतर्मुख करने के लिए हैं। कीर्तन भी वृत्ति को अंतर्मुख करने के लिए है।

जब स्वरूप में निष्ठा हो जाये तो फिर खुली आँख भी समाधि है। जब तक स्वरूप में निष्ठा नहीं हुई, तब तक इष्ट में, भाव में, प्रेम में निष्ठा करके अंतर्मुख होना चाहिए। इष्ट में, भाव में, प्रेम में निष्ठा करके अंतर्मुख हुआ जाता है तो अंतर्मुखता में जो आनंद आता है, वही आत्मा का आनंद है।

ऐसा नहीं कि भगवान बाद में मिलेंगे। जब-जब मन अंतर्मुख हो जाता है तब-तब आत्मा में लीन हो जाता है, आनंद आता है। जब आनंद आये तो समझो आत्मा के नजदीक हो किन्तु मनोराज हो गया, निद्रा आने लगे तब चित्त को सावधान करना चाहिए। मनोराज, निद्रा या तंद्रा में चित्त न जाये इसके लिए स्वाध्याय, जप, कीर्तन करो एवं आत्मारामी सच्चे महापुरुषों के सान्निध्य में बैठकर ध्यान करो।

चित्त को अंतर्मुख करने के लिए निष्ठा की जरूरत है। छोटे-मोटे विघ्न तो आयेंगे-जायेंगे। फिर चाहे हिमालय की गुफा में जाकर ही क्यों न बैठो ? जीव-जन्तु, पशु आदि तो वहाँ भी तंग करेंगे ही, किन्तु उनकी वजह से हलचल करोगे तो फिर चित्त को शांत कब करोगे ? अतः एकनिष्ठ होकर बैठना चाहिए और एकनिष्ठ भी बोझ बनकर नहीं कि 'मैं शांत बैठा हूँ।'

कोई आया तो क्या ? कोई गया तो क्या ? किसको कब तक निहारते रहोगे ? ...और बाहर जो दिखेगा उसका अर्थ तुम अपनी समझ के अनुसार लगाओगे। सही देखना है, सच्चा देखना है तो एकनिष्ठ होकर अंतर्मुख होना चाहिए।

हम जितने अंतर्मुख होते हैं उतनी शक्ति बढ़ती है। जितने संकल्प कम होते हैं उतना सामर्थ्य बढ़ता है। जैसे, जितने बादल हट जाते हैं उतना सूर्य का प्रभाव दिखता है। जितने बादल अधिक आ जाते हैं उतना सूर्य का प्रभाव कम हो जाता है। ऐसे ही आत्मसूर्य है। जितने स्पंदन ज्यादा हैं बादलों की नाईं, उतना आत्मसूर्य का प्रभाव कम दिखता है और जितने संकल्प कम होते हैं उतना प्रभाव ज्यादा दिखता है। वास्तव में आत्मा का तेज घटता-बढ़ता नहीं है लेकिन संकल्पों के कारण घटता हुआ लगता है। अतः एकनिष्ठ होकर ध्यानस्थ होना चाहिए।

चाहे भक्ति हो, योग हो या ज्ञान हो, आपकी निष्ठा आपके काम आयेगी। यदि निष्ठा नहीं होगी तो भक्त की भक्ति अधूरी रह जायेगी, योगी का योग अधूरा एवं ज्ञानी का ज्ञान अधूरा रह जायेगा। एकनिष्ठा... जैसे पतिव्रता स्त्री की पति में निष्ठा होती है वैसे ही साधक की अपने साधन में निष्ठा होनी चाहिए, नहीं तो संसार की माया ऐसी है कि फँसा देती है। भगवान से भी बढ़कर भगवत्प्राप्ति के साधन में आदरबुद्धि होनी चाहिए। आदरबुद्धि के अभाव में ही साधन में रुचि नहीं होती।

चातक मीन पतंग जब, पिय बिन नहीं रह पाय।
साध्य को पाये बिना, साधक क्यों रह जाय ?

ध्यान का आस्वादन भी वही ले सकता है जिसकी निष्ठा दृढ़ हो।

*

'संत हृदय नवनीत समाना'

[गुरु अर्जुनदेव शहीद दिवस : ५ जून २०००]

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

सिक्खों के पाँचवें गुरु थे गुरु अर्जुनदेव। गुरु अर्जुनदेव के पास गाने-बजानेवाले कुछ बैरागी लोग आया करते थे। कहा जाता है कि उन दिनों उन्हें 'मिराशी' बोला जाता था। उस समय गुरु अर्जुनदेव की गायक मण्डली में दो मिराशी लोग थे। वे दोनों ही मुस्लिम जाति के थे। एक का नाम था सत्ता और दूसरे का नाम था बलवड़ा। वे दोनों गुरु के आश्रम में कीर्तन-भजन आदि गाया करते थे।

एक बार उनके घर में बेटी की शादी थी। उन्होंने गुरु अर्जुनदेव से कहा : ''हे गुरुदेव ! हमारे घर में विवाहोत्सव है, इसलिये हमें धन की जरूरत है। आप कृपा करके हमारी मदद कीजिये।''

यह सुनकर गुरु अर्जुनदेवजी ने उन्हें दो-तीन सौ रूपये दिलवाने का आश्वासन दिया।

दो-तीन सौ रूपये की बात सुनकर वे दोनों आश्चर्यचकित होकर बोले :

''आपके तो इतने अधिक शिष्य हैं। एक-एक शिष्य से अगर एक-एक टका भी मिल जायेगा तो इस तरह से हमारे पास १००० रूपये तो सरलता से हो ही जायेंगे। दो-तीन सौ रूपयों से तो हमारा कुछ भी नहीं होगा।''

उस जमाने में टका बहुत महत्त्व रखता था। उस समय टके में जो वस्तु मिलती थी, वह अब सौ पैसे में भी नहीं मिलती। एक टका आज के दो सौ पैसों के बराबर माना जा सकता है।

गुरु अर्जुनदेव ने कहा : ''ठीक है, दिलवा देंगे।''

वे दोनों प्रतिदिन गुरु अर्जुनदेव के पास आते, कीर्तन-भजन आदि गाते। फिर गुरुजी के सामने खड़े हो जाते और कहते :

''गुरुजी ! आपके शिष्य तो मुल्तान तक फैले हुए हैं। आप उन सबसे १-१ टका दिलवाने की व्यवस्था करवा दीजिये।''

यह सुनकर गुरु अर्जुनदेव ने साढ़ेचार टके उनकी हथेली पर रखते हुए कहा : ''लो, बस इतने ही मिल पायेंगे।''

सत्ता और बलवड़ा : ''क्यों ?''

गुरु अर्जुनदेव : ''साढ़ेचार टके इसलिए कि उस अकाल पुरुष परमेश्वर के भी साढ़ेचार ही सच्चे शिष्य हैं। एक तो सच्चे शिष्य थे गुरु नानकदेव, दूसरे अंगददेव, तीसरे अमरदास और चौथे रामदास। पाँचवाँ मैं आधा शिष्य हूँ। मैं अभी आधा ही उस ब्रह्म को समर्पित हुआ हूँ। वे सब तो पूर्ण शिष्य थे इसलिए चार टके पूरे, मैंने अभी पूर्णता को प्राप्त नहीं किया है इसलिये मेरा टका आधा।

पूरा प्रभु आराधिया, पूरा जा का नाव।
नानक ! पूरा पाइया, पूरे के गुण गान॥

जैसे बिंदु सिंधु में मिल जाता है ऐसे ही ये चारों भी ब्रह्म में मिल चुके थे। वे पूरे-के-पूरे थे। चार सत्‌शिष्य और आधा मैं, इस तरह से साढ़ेचार टके ले जाओ।''

यह सुनकर उन दोनों को गुरु अर्जुनदेव के प्रति अश्रद्धा हो गई। उन्होंने गुरु अर्जुनदेव के पास आना छोड़ दिया और निंदा करना शुरू कर दिया।

गुरु अर्जुनदेव ने उनको संदेशा भेजा कि आप लोग आओ, कीर्तन करो, भजन करो और संगत को उल्लसित-आनंदित करो। लेकिन वे दोनों नहीं आये। गुरु अर्जुनदेव ने दूसरी बार एक व्यक्ति को भेजा तो उन्होंने कहलवा दिया : ''हम नहीं आयेंगे।''

उसके बाद तीसरी बार जब गुरु ने संदेशा भेजा तो उन्होंने कहा : ''रोज-रोज संदेशा क्यों भिजवाते

हो ? हम भी देखते हैं कि हमारे बिना अब आपका आश्रम कैसे चलता है। आपके गुरु नानकदेव को भी हमारी जाति के बाला-मरदाना ने ही चमकाया था, नहीं तो आपके गुरु को कौन पूछता ? हम यहाँ गाते हैं, बजाते हैं तो लोग प्रशंसा करते हैं। इसीसे तो आपको रोजी-रोटी मिलती है। हमारे कारण ही आप गुरु होकर पूजे जा रहे हो। अब देखते हैं कि आप अपनी आजीविका कैसे चलाते हो।''

गुरु अर्जुनदेव बहुत सरल स्वभाव के थे। वे स्वयं ही उन्हें मनाने चले गये और बोले :

''भाई ! जो हुआ सो हुआ। तुमने ही तो कहा था कि शिष्यों से टका दिलवाओ। ...तो सत्‌शिष्य तो ये चार ही थे, और मैं आधा। इसीलिये मैंने तुम्हें साढ़ेचार टके दिये थे। लेकिन तुम चिंता मत करो। तुम जितना कहोगे, मैं तुम्हें उतना धन दे दूँगा और तुम्हारी बेटी की शादी निर्विघ्न हो जायेगी। तुम्हारी बेटी हमारी भी तो बेटी ही है !''

गुरु अर्जुनदेव की बात सुनकर सत्ता और बलवड़ा बोले :

''इन मीठी-मीठी बातों से काम नहीं चलेगा। हमारे बिना आपका कार्य रुक गया है, इसलिये अब आप हमारे पास आये हो। अब चाहे कुछ भी हो जाये, हम वापस आनेवाले नहीं हैं।'' ऐसा करते-करते उन्होंने गुरु नानक आदि सभी गुरुओं की निंदा करना शुरू कर दिया।

गुरु अर्जुनदेव पहले तो सब सुनते रहे लेकिन जब वे लोग उनके गुरुजनों पर पहुँचे तो उनसे सहन नहीं हुआ। वे बोले : ''जब तक तुम मेरी निंदा करते रहे तब तक मैं कुछ नहीं बोला लेकिन अब तुम मेरे ब्रह्मवेत्ता पूर्ण गुरुओं की निंदा तक पहुँच गये हो। यह मुझसे सहन नहीं होता।''

वे दोनों बोले : ''आपसे सहा नहीं जाता तो हम क्या करें ? हम तो बोलेंगे ही।'' जब वे लोग चुप नहीं हुए तो गुरु अर्जुनदेव को क्रोध आ गया और उन्होंने उन्हें श्राप देते हुए कहा : ''जाओ, तुम्हारा सत्यानाश हो।''

गुरु अर्जुनदेव ने अपने आश्रम में भी घोषणा करवा दी कि : ''सत्ता और बलवड़ा मिराशियों के पास जो भी जायेगा, वह हमारी नज़रों से गिर जायेगा। हमने उनका त्याग कर दिया है। अब हमारे त्यक्त लोगों से जो जुड़ेगा वह हमारा त्याग करनेवाला माना जायेगा। जो कोई भी उनकी सिफारिश लेकर आयेगा कि 'उन पर कृपा करो... उन्हें माफ कर दो...' तो उसको भी गधे पर बिठाकर, मुँह काला करके उसके पीछे शरारती लड़के लगा दिये जायेंगे।''

महापुरुषों के संकल्प में अद्‌भुत सामर्थ्य होता है। गुरु के श्राप का ऐसा प्रभाव पड़ा कि अनिद्रा, बीमारी, अशांति ने उनके शरीर में घर कर लिया। लोगों ने उनको धिक्कारना शुरू कर दिया। वे जहाँ भी जाते, लोग उन पर थूकते और कहते :

''ये गुरु के त्यागे हुए हैं, इसलिये इन्हें घर में नहीं घुसने देना चाहिए। कहीं हमारे घर में भी कुछ अनहोनी न हो जाये !''

परमात्म-नियम से जब जीव नीचे गिरता है, तब उसकी कहीं भी कुछ भी कीमत नहीं रहती।

गुरु के श्राप ने जोर पकड़ा तो प्रकृति भी सत्ता और बलवड़ा पर नाराज हो गई। कोई उनका कीर्तन तो क्या सुनता, अगर वे किसी के दरवाजे पर भी जाते थे तो लोग अपने घर के दरवाजे बंद कर देते थे, यह सोचकर कि : 'गुरु के ठुकराये हुए हैं... गुरु द्वारा शापित हैं। हमारे घर आयेंगे तो हम पर भी प्रकृति कोपायमान हो जायेगी।'

कोई भी उनका मुँह तक देखना पसन्द नहीं करता था।

सत्ता और बलवड़ा को कोढ़ की बीमारी हो गई और सब रास्ते उनके लिये बंद हो गये।

संत सतावे तीनों जावे, तेज बल और वंश।
ऐड़ा-ऐड़ा कई गया, रावण कौरव केरो कंस॥

जब सब ओर से धिक्कारे गये, तब उन्हें गुरु की ही याद आई और गुरु के दर पर जाने का विचार करने लगे। ...लेकिन **अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत ?** अब क्या मुँह लेकर गुरु के दर पर जायें ? अब तो आश्रम में कोई प्रवेश भी नहीं करने देगा।

वे दोनों एक-एक करके गुरु अर्जुनदेव के सब शिष्यों के पास गये और गिड़गिड़ाने लगे कि : 'आप हमारी सिफारिश लेकर गुरुजी के पास जाओ। हम दोनों अपनी गलती पर बहुत शर्मिंदा हैं। हम माफी माँगते हैं। ऐसी गलती दुबारा नहीं करेंगे। हम कभी भी गुरुओं की निन्दा नहीं करेंगे। हम हमेशा गुरु के दर पर ही गायेंगे और इसके एवज में एक पैसा भी नहीं लेंगे।'

लेकिन कोई भी शिष्य गुरु को यह बताने की हिम्मत नहीं करता था कि : 'वे दोनों पश्चाताप कर रहे हैं... आप उनको माफ कर दें।' कौन-सा शिष्य गुरु के क्रोध का पात्र बनना चाहेगा ?

आखिर उन दोनों ने गुरु अर्जुनदेव के शिष्यों में से 'भाई लद्दा' नाम के एक शिष्य के पैर पकड़े और दोनों खूब रोये-धोये।

भाई लद्दा लोगों के दुःख-निवारण करने के लिये बड़े मशहूर थे। वे बहुत सेवाभावी थे। परोपकार से उन्हें बहुत प्रीति थी।

वे बोले : ''गुरुजी के पास तुम दोनों की सिफारिश लेकर जाना तो लोहे के चने चबाने के बराबर है। लेकिन अब तुम दोनों पश्चाताप से भरकर मेरे पास आये हो इसलिए मैं कोशिश करूँगा। मुझे तुम्हारे और गुरु के बीच मध्यस्थ का काम करना है। गुरुजी ने शर्त रखी है कि जो कोई भी तुम्हारी सिफारिश लेकर उनके पास जायेगा उसे गधे पर बिठाकर, उसका मुँह काला करके उसके पीछे शरारती लड़कों को भड़काया जायेगा। फिर भी, अब तुम निश्चिन्त होकर जाओ। मैं तुम्हारा कार्य करने का पूरा प्रयास करूँगा।''

भाई लद्दा ने एक गधा मँगवाया और वे अपने हाथों से ही अपना मुँह काला करके गधे पर बैठ गये। फिर अपने पास-पड़ोस के लड़कों को बुलाकर उन्होंने कहा : ''मैं तुम सबको इतने-इतने पैसे दूँगा। तुम मेरे पीछे-पीछे चलो और हल्ला-गुल्ला करो... मेरा मजाक उड़ाओ।''

इस तरह भाई लद्दा यह सारी बारात लेकर गुरु अर्जुनदेव के पास पहुँचे। गुरु अर्जुनदेव ने उन्हें इस हाल में देखा तो वे बोले : ''यह किसकी बारात आ रही है ?'' ...किन्तु जब उन्होंने ध्यान से देखा तो बोले : ''अरे ! यह तो परोपकारी भाई लद्दा है ! परोपकार में प्रसिद्ध भाई लद्दा ! तुम्हारा यह हाल किसने किया ?''

भाई लद्दा बोले : ''हे गुरुदेव ! किसीने नहीं किया। स्वयं मेरे स्वभाव ने ही मेरा यह हाल करवाया है। मेरा स्वभाव है कि मैं दूसरे का दुःख नहीं देख सकता। हे गुरुदेव ! आपके वे दोनों निंदक सत्ता और बलवड़ा भी अपने-आप पर बहुत शर्मिंदा हैं। वे दोनों पश्चाताप की आग में जल रहे हैं और आपसे माफी माँगना चाहते हैं।

आपने कहा था कि जो भी उनकी सिफारिश लेकर आयेगा उसको गधे पर बिठाकर, मुँह काला करके उसके पीछे बदमाश लड़के लगाये जायेंगे। हे गुरुदेव ! आपका वचन सत्य करने के लिये मैं पहले से ही तैयार होकर आया हूँ। अब आपकी करुणा- कृपा के सिवाय उनका और कोई भी सहारा नहीं है।''

बोलते-बोलते भाई लद्दा का हृदय भर गया। आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे। वे गुरु अर्जुनदेव के चरणों में गिर पड़े। संत बाहर से चाहे वज्र जैसे कठोर दिखाई दें लेकिन भीतर से तो अति कोमल होते हैं।

संत हृदय नवनीत समाना।

गुरु अर्जुनदेव का हृदय भाई लद्दा के लिये छलक पड़ा। उन्होंने हाथ पकड़कर भाई लद्दा को उठाया और कहा : ''भाई लद्दा ! तुमने तो कमाल कर दिया ! जाओ, मैंने उनको माफ कर दिया और उनको जाकर कहो कि जिस मुख से तुमने गुरुओं की निंदा की, उसी मुख से उनकी प्रशंसा करो। मेरे गुरु की महिमा गाओ।''

भाई लद्दा ने जाकर सत्ता और बलवड़ा को यह बात बताई तो दोनों खुशी से झूम उठे और उन्होंने गुरु की आज्ञा मानते हुए गा-गाकर सबको गुरु अर्जुनदेव के गुरु की महिमा सुनाई। गुरु की कृपा से उनके शरीर की बीमारी, कोढ़ आदि सब ठीक हो गया।

कैसी है संतपुरुषों की करुणा और कैसी है उनकी महिमा !

श्रीकृष्ण और रुक्मिणी

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

'श्रीमद्भागवत' के दसवें स्कंध के ६०वें अध्याय में यह प्रसंग आता है :

एक दिन समस्त जगत के परम पिता और ज्ञानदाता भगवान श्रीकृष्ण रुक्मिणीजी के पलंग पर आराम से बैठे हुए थे । श्री रुक्मिणीजी उन्हें पंखा झल रही थीं । तब भगवान ने विनोद में रुक्मिणीजी से कहा :

''हमारी तुम्हारी जोड़ी ठीक नहीं है । तू गौरवर्ण है, सुन्दर है और मैं साँवला हूँ, श्यामवर्ण हूँ । कहाँ तो तू राजकन्या और कहाँ हम चरवाहे ! बचपन में गायें चराने का धंधा किया । युवावस्था में रथ चलाया । जरासंध आदि राजाओं से भय पाकर द्वारिका में आ बसे और हमारी नगरी का मार्ग कोई जानता ही नहीं, हम ऐसी नगरी में रहते हैं ।

तुम तो विदर्भनरेश भीष्मक की पुत्री और रुक्मि की बहन हो । तुम्हारे लिये शिशुपाल और दूसरे भोगी राजा तैयार थे । हमारे पास तो भोग के साधन भी नहीं हैं और भोग में हमारी रुचि भी नहीं है । हम तो आत्मरस में तृप्त रहनेवाले हैं । पुत्र में, परिवार में उदासीन रहनेवाले हैं । हमारे जैसे गुणहीन को वरकर तुमने बड़ी गलती की है । तुमने हमारा वरण करने में जरा जल्दबाजी कर ली है । खैर, अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है । तुम अपने अनुरूप किसी श्रेष्ठ क्षत्रिय का वरण कर लो, जिसके द्वारा तुम्हारी इहलोक और परलोक की सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हो सकें ।

उदासीना वयं नूनं नं स्त्र्यापत्यार्थकामुकाः ।
आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ॥

'निश्चय ही हम उदासीन हैं । हम स्त्री, संतान और धन के लोलुप नहीं हैं । निष्क्रिय और देह-गेह से संबंधरहित दीपशिखा के समान साक्षीमात्र हैं । हम अपने आत्मा के साक्षात्कार से ही पूर्णकाम हैं, कृतकृत्य हैं ।' (श्रीमद्भागवत : १०.६०.२०)

क्षणभर के लिए भी भगवान श्रीकृष्ण से अलग न होने के कारण रुक्मिणीजी को यह अभिमान हो गया था कि 'मैं इनकी सबसे अधिक प्यारी हूँ ।' इसी गर्व की शांति के लिये इतना कहकर भगवान चुप हो गये ।

जीव की और कोई अँगड़ाई हो तो ईश्वर और सद्गुरु सह लेते हैं लेकिन जीव का अहंकार वे कभी नहीं सहते । अहंकार बड़ी बाधा है । जीव के भीतर कोई बात छुपी होती है तो उसे ऐसी-वैसी बात कहकर उसके अंतःकरण से बात निकालने के लिये ईश्वर ऐसी लीला किया करते हैं ।

श्रीकृष्ण ने रुक्मिणीजी को जब यह बात कही तो वे बेहोश हो गयीं । वे भगवान की भक्त तो थीं ही । पवित्र बुद्धि को थोड़ा-सा भी कह दो तो वह सचेत हो जाती है ।

रुक्मिणीजी भगवान को पंखा झलते-झलते बेहोश हो गईं तो भगवान पलंग से नीचे उतरे और अपने पीतांबर से रुक्मिणीजी को पंखा झलने लगे, मुँह पर पानी छिड़का एवं जगाते हुए बोले :

''ए रुक्मिणी ! तू क्या करती है ? गृहस्थ जीवन में कभी-कभी विनोद, आनंद-प्रमोद करने के लिये ऐसी बातचीत होती है । तेरे अंतर के भावों को निहारने के लिये और विनोद के लिये मैंने ऐसा कहा । तेरा मेरे प्रति कितना स्नेह है, मैं जानता हूँ । तू धन्य है ! तेरे लिये इतनी-इतनी सुख-सुविधाएँ थीं, राजसुख था, तुझे वरण करने के लिये इतने राजा उत्सुक थे फिर भी तूने मेरा वरण किया, तुझे धन्यवाद है ! मैं तुझे पहचानता हूँ इसीलिये तो मैं भागा-भागा तेरा हाथ पकड़ने को आया था । मैंने तो यह विनोदमात्र किया

था। तू सच्चा समझकर बेहोश हो गई ! यह सारा संसार विनोदमात्र है और मेरी इस बात को सच्ची समझकर तू बेहोश होती है ! हे रुक्मिणी ! तू अपने होश में आ जा।''

रुक्मिणी यानी बुद्धि। हे बुद्धि ! तू अपने शुद्ध होश में आ जा। संसार की बातों में बेहोश मत हो। श्रीकृष्ण की और सद्गुरुओं की इच्छा है कि तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारी रुक्मिणी होश में आ जाये।

रुक्मिणी सचेत हुई। जाग्रत होकर वे भगवान से बोलीं : ''स्वामी ! आप जो कहते हैं वह बिल्कुल यथार्थ कहते हैं। हमारी आपकी जोड़ी ठीक नहीं है। कहाँ तो मैं हाड़-मांस की देह में रमण करनेवाली और कहाँ आप आत्मारामी, निष्कलंक निजानंद में रमण करनेवाले ! आप कहते हैं कि हमारे नगर का रास्ता कोई नहीं जानता। हे प्रभु ! आप अंतर्यामी सर्वनियंता हैं और हृदयगुहा में रहते हैं। इसलिये रजो-तमोगुणी राजा और मोहपाश में बँधे हुए जीव आपके नगर का मार्ग नहीं जानते हैं। कोई विरला जिज्ञासु ही गुरुप्रसाद से आपके नगर में पहुँचने का प्रयास करता है और जब द्वारिका से निकलकर कृपा करके आप उसका हाथ पकड़ते हो तभी मुलाकात होती है। आपने यथार्थ कहा है, देव !

हमारी आपकी जोड़ी ठीक नहीं है यह बात इसलिये भी सच है कि हे प्रभु ! मैं अल्पमति, छोटी-छोटी बातों में उलझनेवाली हूँ और आप मति के साक्षी हैं जिससे अनंत-अनंत मतियाँ प्रकट हो-होकर लीन हो जाती हैं। कहाँ एक बूँद और कहाँ महासागर ! यह तो बेठीक जोड़ा ही है लेकिन आपकी उदारता ने सुन्दर जोड़ा बना लिया है तो हे नाथ ! यह सुन्दर जोड़ा बना ही रहे ऐसी कृपा करना।

हे स्वामी ! आपने कहा कि राजा आपका द्रोह करते हैं। हे प्रभु ! आपकी यह बात भी यथार्थ है। जो धन के मद में हैं, सत्ता के मद में हैं वे सच्चिदानंद परमात्म-रस से विमुख हैं। वे आपका द्रोह करते हैं।

हे नाथ ! आप कहते हैं कि : 'हम एकाकी आत्मारामी हैं।' आपकी यह बात भी यथार्थ है क्योंकि अनेकों में एक आप ही हैं। अनेक अन्तःकरणों में, अनेक मनों में, अनेक आँखों में आप एकाकी सत्-चित्-आनंदस्वरूप हैं। अनेक वृक्षों में रस लेने की सत्ता आपकी है, अनेक पक्षियों में किल्लोल करने की सत्ता आपकी है, अनेक आँखों में देखने की सत्ता आपकी है। अनेक मनों में संकल्प-विकल्प के साक्षी आप हैं। अनेक बुद्धियों के उद्भवस्थान आप ही हैं। अनेक सृष्टियों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के आधारभूत अधिष्ठान भी आप ही हैं इसलिये आप एकाकी हैं।''

भगवान कहते हैं : ''हे रुक्मिणी ! यही बातें सुनने के लिये मैंने विनोद किया था। तुमने मेरे वचनों की जैसी व्याख्या की है, वह अक्षरशः सत्य है।''

कैसी दिव्य है श्रीकृष्ण की लीला ! विनोद-विनोद में भी आत्मज्ञान से सराबोर वार्तालाप... किन्तु उनके इस विनोद को भी वही समझ सकता है जिसकी रुक्मिणीरूपी मति शुद्ध हो, पवित्र हो।

भगवान करे कि हम भगवान के भावों को समझनेवाली अपनी रुक्मिणीरूपी मति बना लें। बार-बार इन पावन सत्संग-वचनों का पठन-मनन करना और शांत होना हितकारी होगा।

ॐ शांति... ॐ माधुर्य... ॐ ॐ परमानन्द... पूर्ण आनंद...

पढ़कर भागा-भागी में न पड़ें, शांत हो जायें... फिर पढ़ें... फिर शांत हो जायें...

'ऋषि प्रसाद' का कमाल

'ऋषि प्रसाद' का कमाल तो देखो !
यह लाई सारी दुनिया को लेखो ॥
इसके पढ़ने से मन में आनंद है छाया।
दिल में तरह-तरह का अनुभव है आया ॥
यह गुरुज्ञान का प्रकाश है फैलाती।
लोगों के मन में प्रेम की भावना है जगाती ॥
इसे पढ़कर कइयों ने अपने को सुधारा।
कितनी अनुपम है 'ऋषि प्रसाद' की ज्ञान धारा ॥
कह 'विश्वनाथ' इसे घर-घर मँगाओ।
गुरुज्ञान का सच्चा अनुभव पाओ ॥

- विश्वनाथ जोशी

सनातन सत्शास्त्र अमृत

[त्रिविध दीक्षा का निरूपण * शक्तिपात की आवश्यकता तथा लक्षण * गुरु का महत्त्व * ज्ञानी गुरु से ही मोक्ष की प्राप्ति]

श्रीकृष्ण बोले : ''भगवन् ! आपने मंत्र का माहात्म्य तथा उसके प्रयोग का विधान बताया, जो साक्षात् वेद के तुल्य है। अब मैं उत्तम शिव-संस्कार की विधि सुनना चाहता हूँ, जिसे मंत्रग्रहण के प्रकरण में आपने कुछ सूचित किया था। वह बात मैं भूला नहीं हूँ।''

उपमन्यु ने कहा : ''अच्छा, मैं तुम्हें भगवान शिव द्वारा कथित परम पवित्र संस्कार का विधान बता रहा हूँ, जो समस्त पापों का शोधन करनेवाला है। मनुष्य जिसके प्रभाव से पूजा आदि में उत्तम अधिकार प्राप्त कर लेता है, उस षड्ध्वशोधन कर्म को 'संस्कार' कहते हैं। शुद्धि करने के कारण ही उसका नाम संस्कार है। यह विज्ञान देता है और पाशबन्धन को क्षीण करता है। इसलिये इस संस्कार को ही दीक्षा भी कहते हैं। शिव-शास्त्र में परमात्मा शिव ने 'शाम्भवी', 'शाक्ती' और 'मांत्री' तीन प्रकार की दीक्षा का उपदेश किया है। गुरु के दृष्टिपातमात्र से, स्पर्श से तथा सम्भाषण से भी जीव को पाशों का तत्काल नाश करनेवाली जो संज्ञा (सम्यक् बुद्धि) प्राप्त होती है, वह शाम्भवी दीक्षा कहलाती है। उस दीक्षा के भी दो भेद हैं : तीव्रा और तीव्रतरा। पाशों के क्षीण होने में जो शीघ्रता या मन्दता होती है, उसी के भेद से ये दो भेद हुए हैं। जिस दीक्षा से तत्काल सिद्धि या शांति प्राप्त होती है, वही तीव्रतरा मानी गयी है। जिज्ञासु पुरुष के पाप का अत्यन्त शोधन करनेवाली जो दीक्षा है, उसे तीव्रा कहा गया है। गुरु योगमार्ग से शिष्य के शरीर में प्रवेश करके ज्ञानदृष्टि से जो ज्ञानवती दीक्षा देते हैं, वह शाक्ती कही गयी है। क्रियावती दीक्षा को मांत्री दीक्षा कहते हैं। शक्तिपात के अनुसार शिष्य गुरु के अनुग्रह का भाजन होता है।

उत्कृष्ट बोध और आनन्द की प्राप्ति ही शक्तिपात का लक्षण है, क्योंकि वह परम शक्ति प्रबोधानन्दरूपिणी ही है। आनन्द और बोध का लक्षण है अन्तःकरण में सात्त्विक विकार। जब अंतःकरण द्रवित होता है, तब बाह्य शरीर में कम्प, रोमांच, स्वरविकार, नेत्रविकार और अंगविकार प्रकट होते हैं।

शिष्य गुरु का शिक्षणीय होता है और उसका गुरु के प्रति गौरव होता है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके शिष्य ऐसा आचरण करे, जो गुरु के गौरव के अनुरूप हो। जो गुरु हैं, उन्हें शिव कहा गया है और जो शिव हैं, उन्हें गुरु माना गया है। विद्या के आकार में शिव ही गुरु बनकर विराजमान हैं। जैसे शिव हैं, वैसी विद्या है और जैसी विद्या है, वैसे गुरु हैं। शिव, विद्या और गुरु के पूजन से समान फल मिलता है। शिव सर्वदेवात्मक हैं और गुरु सर्वमंत्रमय हैं। अतः सम्पूर्ण यत्न से गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करना चाहिए। यदि मनुष्य अपना कल्याण चाहनेवाला और बुद्धिमान् है तो वह गुरु के प्रति मन, वाणी और क्रिया द्वारा कभी मिथ्याचार अथवा कपटपूर्ण बर्ताव न करे। गुरु आज्ञा दें या न दें, शिष्य सदा उनका हित और प्रिय करे। उनके सामने और पीठ पीछे भी उनका कार्य करता रहे। ऐसे आचार से युक्त गुरुभक्त और मन में सदा उत्साह रखकर गुरु का प्रिय कार्य करनेवाला जो शिष्य है, वही शैव धर्मों के उपदेश का अधिकारी है। यदि गुरु गुणवान्, विद्वान्, परमानन्द के प्रकाशक, तत्त्ववेत्ता और शिवभक्त हैं तो वे ही मुक्ति देनेवाले हैं, दूसरा नहीं। ज्ञान उत्पन्न करनेवाला जो परमानन्दजनित तत्त्व है, उसे जिन्होंने जान लिया है, वे ही आनन्द का साक्षात्कार करा सकते हैं। ज्ञानरहित, नाममात्र का गुरु ऐसा नहीं कर सकता।

नौकाएँ एक-दूसरी को पार लगा सकती हैं किन्तु

क्या कोई शिला दूसरी शिला को तार सकती है ? नाममात्र के गुरु से नाममात्र की ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। जिन्हें तत्त्व का ज्ञान है, वे ही स्वयं मुक्त होकर दूसरों को भी मुक्त करते हैं। तत्त्वज्ञान से हीन पुरुष को बोध कैसे होगा और बोध के बिना कैसे 'आत्मा' का अनुभव होगा ? जो आत्मानुभव से शून्य है, वह 'पशु' कहलाता है। पशु की प्रेरणा से कोई पशुत्व को नहीं लाँघ सकता, अतः तत्त्वज्ञ पुरुष ही 'मुक्त' और 'मोचक' हो सकता है, अज्ञ नहीं। समस्त शुभ लक्षणों से युक्त, सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञाता तथा सब प्रकार के उपाय-विधान का जानकार होने पर भी जो तत्त्वज्ञान से हीन है, उसका जीवन निष्फल है। जिन पुरुष की अनुभवसम्पन्न बुद्धि तत्त्व के अनुसंधान में प्रवृत्त होती है, उनके दर्शन, स्पर्श आदि से परमानंद की प्राप्ति होती है। अतः जिनके सम्पर्क से ही उत्कृष्ट बोधस्वरूप आनन्द की प्राप्ति सम्भव हो, बुद्धिमान् पुरुष उन्हींको अपना गुरु चुनें, दूसरे को नहीं। योग्य गुरु से जब तक अच्छी तरह ज्ञान न हो जाय, तब तक विनयाचारचतुर मुमुक्षु शिष्यों को उनकी निरन्तर सेवा करनी चाहिये। उनका अच्छी तरह ज्ञानसम्यक् परिचय हो जाने पर उनमें सुस्थिर भक्ति करनी चाहिए। जब तक तत्त्व का बोध न प्राप्त हो जाय, तब तक निरन्तर गुरुसेवन में लगे रहना चाहिए।

गुरु के द्वारा तिरस्कार आदि होने पर भी जो विषाद को नहीं प्राप्त होते, वे ही संयमी, शुद्ध तथा शिव-संस्कार कर्म के योग्य हैं। जो किसीकी हिंसा नहीं करते, सबके प्रति दयालु होते हैं, सदा हृदय में उत्साह रखकर सब कार्य करने को उद्यत रहते हैं, अभिमानशून्य, बुद्धिमान् और स्पर्धारहित होकर प्रिय वचन बोलते हैं, सरल, कोमल, स्वच्छ, विनयशील, सुस्थिरचित्त, शौचाचार से संयुक्त और शिवभक्त होते हैं, ऐसे आचार-व्यवहारवाले द्विजों को मन, वाणी, शरीर और क्रिया द्वारा यथोचित रीति से शुद्ध करके तत्त्व का बोध कराना चाहिए, यह शास्त्रों का निर्णय है।

[शिवपुराण वायवीय संहिता-उत्तरखण्ड]

✲

विश्वात्मा के साथ एकत्व करानेवाली साधना

निःस्वार्थ सेवा

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में हमारे शास्त्र कहते हैं कि जब भगवान नारायण के नाभिकमल से ब्रह्माजी का प्रागट्य हुआ तब ब्रह्माजी दिग्मूढ़ की स्थिति में पड़ गये। वे समझ नहीं पा रहे थे कि : 'मेरा प्रादुर्भाव क्यों हुआ ? मुझे क्या करना है ?' तभी आकाशवाणी हुई : तप कर... तप कर... तप कर...

तत्पश्चात् ब्रह्माजी समाधि में स्थित हुए। उससे सामर्थ्य प्राप्त करके उन्होंने अपने संकल्प से इस सृष्टि की रचना की। अर्थात् हमारी सृष्टि की उत्पत्ति ही तप से हुई है। इसका मूल स्थान तप है।

हमारे सत्शास्त्रों में अनेक प्रकार के तप बताये गये हैं। उनमें से एक महत्त्वपूर्ण तप है निष्काम कर्म, सेवा, परोपकार। इसी तप को भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में 'कर्मयोग' कहा तथा ज्ञान, भक्ति और योग की भाँति इस साधना को भी भगवत्प्राप्ति, मोक्षप्राप्ति में समर्थ बताया।

व्यक्ति अपने तथा अपने परिवार के प्रति तो उदार रहता है परन्तु दूसरों की उपेक्षा करता है। वह स्वयं को दूसरों से भिन्न मानता है। इसीका नाम अज्ञान, माया है। जन्म-मरण का, शोक-कष्ट का, उत्पीड़न व भ्रष्टाचार आदि पापों का यही मूल कारण है। भेदभाव और द्वेष ही मृत्यु है तथा अभेद, अनेकता में एकता, सबमें एक को देखना, सबकी उन्नति चाहना ही जीवन है।

समस्त बुराइयों का मूल है स्वार्थ और स्वार्थ

अज्ञान से पैदा होता है । स्वार्थी मनुष्य जीवन की वास्तविक उन्नति एवं ईश्वरीय शांति से बहुत दूर होता है । न तो उसमें श्रेष्ठ समझ होती है और न ही उत्तम चरित्र । वह धन और प्रतिष्ठा पाने की ही योजनाएँ बनाया करता है ।

मनुष्य के वास्तविक कल्याण में स्वार्थ बहुत बड़ी बाधा है । इस बाधा को निःस्वार्थ सेवा एवं सत्संग के द्वारा निर्मूल किया जाता है । स्वार्थ में यह दुर्गुण है कि वह मन को संकीर्ण तथा हृदय को संकुचित बना देता है । जब तक हृदय में 'मैं और मेरे' की लघुग्रंथि होती है तब तक सर्वव्यापक सत्ता की असीम सुख-शांति नहीं मिलती और हम अद्‌भुत पवित्र प्रेरणा प्राप्त नहीं कर पाते । इसके लिए हृदय का व्यापक होना आवश्यक है । इसमें निःस्वार्थ सेवा एक अत्यन्त उपयोगी साधन है ।

निष्काम कर्म जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने की पहली सीढ़ी है । इसके अभ्यास से चित्त की शुद्धि होती है तथा भेदभाव मिटता है । सबमें ईश्वर की भावना दृढ़ होते ही 'अहं' की लघुग्रन्थि टूट जाती है और सर्वत्र व्याप्त ईश्वरीय सत्ता से जीव का एकत्व हो जाता है । भगवद्‌भाव से सबकी सेवा करना यह एक बहुत बड़ा तप है ।

'ईशावास्योपनिषद्' में आता है :

ईशावास्यमिदंसर्वं यत् किं च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

'अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जड़-चेतनरूप जगत है वह ईश्वर से व्याप्त है । उस ईश्वर को साथ रखते हुए इसे त्यागपूर्वक भोगो । किसी भी धन अथवा भोग्य पदार्थ में आसक्त मत होओ ।'

यहाँ पर 'त्याग' पहले है और 'भोग' बाद में । यदि व्यक्ति अपने परिवार में ही आसक्त रहे तो वह विश्वप्रेम विकसित नहीं कर सकेगा, विश्वभ्रातृत्व नहीं पनपा सकेगा । सभी के बच्चे अपने बच्चों के समान नहीं लगेंगे । व्यक्ति का प्रेम, जो व्यापक ईश्वर-सत्ता को अपने हृदय में प्रगट कर सकता है वह प्रेम नश्वर परिवार के मोह में ही फँसकर रह जायेगा ।

परमार्थ को साधने के लिए, कलह, अशांति तथा सामाजिक दोषों को निर्मूल करने के लिए विश्वप्रेम को विकसित करना होगा । संकुचितता को छोड़कर हृदय को फैलाना होगा । सुषुप्त शक्तियों को प्रगट करने का यही सबसे सरल उपाय है ।

जिसका प्रेम विश्वव्यापी हो गया है उसके लिए सभी समान हैं । समस्त ब्रह्माण्ड उसका घर होता है । उसके पास जो कुछ है, सबके साथ बाँटकर उसका उपयोग करता है । दूसरों के हित के लिए अपना हित त्याग देता है । कितना भव्य व्यक्तित्व है उस महामानव का ! वह तो धरती पर साक्षात् भगवान है ।

सरिताएँ सबको ताजा जल दे रही हैं । वृक्ष छाया, फल तथा प्राणवायु दे रहे हैं । सूर्य प्रकाश, ऊर्जा एवं जीवनीशक्ति प्रदान करता है । पृथ्वी सभी को शरण तथा धन-धान्य देती है । पुष्प सुगंध देते हैं । गायें पौष्टिक दूध देती हैं । प्रकृति के मूल में त्याग की भावना निहित है ।

निःस्वार्थ सेवा के द्वारा अद्वैत की भावना पैदा होती है । दुःखियों के प्रति शाब्दिक सहानुभूति दिखानेवालों से तो दुनिया भरी पड़ी है परन्तु जो दुःखी को अपने हिस्से में से दे दे ऐसे कोमलहृदय लोग विरल ही होते हैं ।

निःस्वार्थ सेवा चित्त के दोषों को दूर करती है, विश्वचैतन्य के साथ एकरूपता की ओर ले जाती है । जिसका चित्त शुद्ध नहीं है, वह भले ही शास्त्रों में पारंगत हो, वेदान्त का विद्वान् हो, उसे वेदान्तिक शांति नहीं मिल सकती ।

सेवा का हेतु क्या है ? चित्त की शुद्धि... अहंकार, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा आदि कुभावों की निवृत्ति... भेद-भाव की समाप्ति । इससे जीवन का दृष्टिकोण एवं कर्मक्षेत्र विशाल होगा, हृदय उदार होगा, सुषुप्त शक्तियाँ जागृत होंगी, विश्वात्मा के प्रति एकता के आनंद की झलकें मिलने लगेंगी । 'सबमें एक और एक में सब...' की अनुभूति होगी । इसी भावना के विकास से राष्ट्रों में एकता आ सकती है, समाजों को जोड़ा जा सकता है, भ्रष्टाचार की विशाल दीवार को गिराया जा सकता है, हृदय की विशालता द्वारा वैश्विक एकता को स्थापित किया जा सकता है तथा अखूट आनंद के असीम राज्य में प्रवेश पाकर मनुष्य जन्म सार्थक किया जा सकता है ।

मन को वश में करने के लिये मनुष्य को निरभिमानतापूर्वक भगवान और भगवत्प्राप्त महापुरुषों के बताये हुए मार्ग अनुसार भजन करना चाहिए। इस प्रकार भजन करने से उनकी संपूर्ण कृपा ऐसे मनुष्य पर उतरती है तब मन को सात्त्विक प्रेरणा मिलती है और उससे वह अत्यंत प्रसन्नता पाता है एवं आत्मसुख पाकर आनंदित होता है । जब मन इस प्रकार प्रसन्न होता है तब वृत्ति निरभिमानी बनती है एवं साधक का समाधान अपने-आप हो जाता है। ऐसा हो तब समझ लेना कि अब मन साध्य हुआ है।

भगवत्कृपा का आस्वादन करने से मनोविजय का रहस्य पाकर मन की चंचलता नष्ट हो जाती है तब मन साधक के नियंत्रण में माना जाता है । इससे यह समझा जा सकता है कि साधक ने मन पर विजय प्राप्त करके उसे अपने अधीन व अनुकूल बनाया है ।

सद्गुरु के निजबोध का प्रभाव बड़ा भारी है । जब मन को यह बोध मिलता है तब वह निजात्मक अर्थात् ऐक्यरूप हो जाता है। मन साधक के अनुकूल होकर साधक की स्फुरणा के अनुसार कार्य करने लगता है । जैसे नमक की डली सागर में डालते ही सागररूप हो जाती है, वैसे ही जब साधक निरभिमानी होता है तब तुरंत ही स्वतः परिपूर्ण ब्रह्म हो जाता है एवं उसका 'मैं पना' गल जाता है ।

ऐसा मनोजयी मनुष्य अपनी सात तो क्या, ७१ पीढ़ियों को तारता है। अरे ! उसका संसर्ग करनेवालों का भी कुल तर जाता है। वह तो परब्रह्म को भी स्वाधीन कर लेता है। जिसने मन को जीत लिया उसने सबको जीत लिया समझो । एक कवि ने कहा है :

इस जगत में जिसने मन को जीता ।
उसने सब जीत लिया मानें ॥
स्वर्ग के दुर्लभ सुखों को भी ।
वह तुच्छ करके है जाने ॥

जिसने मनोजय कर लिया है, वह अत्यंत समर्थ हो जाता है । स्वाभाविक शांति आकर उसमें निवास करने लगती है । उसे सुख-दुःख की थप्पड़ें नहीं लगतीं, न ही वह सुख-दुःख की चक्की में पीसा जाता है । वह तो निज आत्मा के आनंद में सदा तृप्त रहता है । ऐसे मनोजयी के पास गर्व तो भूलकर भी नहीं जाता ।

कैसा भी बड़ा शत्रु हो, भले ही वह कितना भी बड़ा राजा या महाराजा हो, उसे साम, दाम, दण्ड, भेद आदि से जीता जा सकता है । उसकी युक्ति, बल एवं त्रुटियों का सूक्ष्म अवलोकन एवं अभ्यास करके निज बाहुबल से उसे हम हरा सकते हैं परन्तु मन को हराना, मन को वश करना इससे भी ज्यादा दुर्लभ है । अपना निज प्रयत्न, भगवत्कृपा, संतकृपा का साथ-सहकार पाकर ही महादुर्जयी मन को जीतनेवाले पुरुष सदा वंदनीय, आदरणीय, पूजनीय हैं । विजयी राजा-महाराजाओं से भी ऊँची विजय को पाये हुए वे पुरुष धन्य हैं ! अतः हम सब साधकों को मन् को जीतने की ऐसी ऊँची विजय पाने का प्रयास करना चाहिए ।

मन को उपदेश से वश करने की इच्छा रखनेवाले निराश ही होते हैं क्योंकि मन किसीका उपदेश सुने, ऐसा नहीं है । मन को उसके इच्छित विषय दिलाकर संतोषी बनानेवाले तो उल्टे उस मन को दुर्जय ही बनाते हैं। ऐसे उपायों से मन कभी संतुष्ट या तृप्त नहीं होता वरन् वह तो और अधिक बलवान् एवं स्वच्छंदी हो जाता है ।

मन को अधीन करने का एक ही उपाय है : भगवान और भगवत्प्राप्त महापुरुषों की शरणागति स्वीकार करना ।

*

संतों के संग का प्रभाव

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

डाकू रामखान भयानक वेश, डरावना चेहरा, क्रूर भुजाओं से युक्त, ऐसा था कि सामने आनेवाला व्यक्ति उसे देखते ही शक्तिहीन हो जाए। परन्तु महात्मा हरनाथ ने उससे न घृणा की, न भय किया, न उसकी चिन्ता की । वे आगे बढ़ते गये । डाकू रामखान पाँच ही कदम दूर रह गया था । वह भी न पीछे हटा, न आगे बढ़ा, फिर भी भीतर से संत की निगाहमात्र से इतना आगे बढ़ गया कि देखते-देखते ही उसकी यात्रा हो रही थी ।

डाकू रामखान, महात्मा हरनाथ के आगे हाथ जोड़कर कहता है : ''हे महात्मन् ! हे प्रभु ! हे चलते-फिरते भगवान ! मैं बहुत पापी हूँ, मैंने बहुत पाप किये हैं, कई खून किये हैं, कई निर्दोषों की संपत्ति हड़प ली है । संपत्ति छीनकर उनके हाथ-पैर तोड़ दिये हैं या उन्हें यमपुरी पहुँचा दिया है । मैंने कितने और कौन-कौन-से पाप किये हैं उन्हें मैं गिन नहीं सकता । हे महात्मन् ! मैं अनाथ ! जन्मों का भटका हुआ जीव ! आपकी शरण में हूँ । मुझे कोई रास्ता बताइए । मुझे अपनी शरण में स्वीकार कर लीजिए ।''

महात्मा हरनाथ ने अपनी गुणातीत दृष्टि, पुण्य-पाप एवं सुख-दुःख से परे, साम्य अवस्था की दृष्टि डाली । महात्मा के समक्ष डाकू रामखान ने अपने पापों का प्रायश्चित किया, अपनी गलती का स्वीकार किया । जो गुरु, संत, महापुरुष के आगे अपनी गलती और पाप का स्वीकार करता है उसके पाप तो कटते हैं, लेकिन जो उनके आगे गलती करता है, झूठ-कपट करता है या कुछ अंट-संट कहता है उसकी गलती और पाप खतरे का रूप ले लेते हैं, बहुत बढ़ जाते हैं ।

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं तीर्थक्षेत्रे विनश्यति ।
तीर्थक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ॥

'और जगह किया हुआ पाप तीर्थक्षेत्र में जाओ तो मिट जाता है परंतु तीर्थक्षेत्र में किया हुआ पाप वज्रलेप हो जाता है ।' यह शास्त्रवचन है ।

गंगा, गया, काशी आदि स्थावर तीर्थ हैं और आत्मारामी संत जंगम (चलते-फिरते) तीर्थ हैं ।

तीर्थ बनता है महापुरुष की चरणरज से । भगवान या भगवत्प्राप्त महापुरुषों की चरणरज से वह जगह तीर्थ बनता है । ऐसे साकार महापुरुषों के आगे जो अपने पापों का प्रायश्चित करता है उसके पाप जल जाते हैं जबकि ऐसे महापुरुषों के आगे जो छल-कपट, जिद्द, हठ करता है उसके पुण्य जल जाते हैं ।

डाकू रामखान ने और तो कइयों को सताया परंतु एक महापुरुष को रिझा लिया । एक सत्पुरुष के आगे हृदयपूर्वक पापों का प्रायश्चित करते हुए, आँखों से गंगा-यमुना बहाते हुए, सच्चे हृदय से उन महापुरुष के चरणों को दूर से प्रणाम किया । 'मैं अधम हूँ... मैं पापी हूँ । मुझे संतों के चरण छूने का अधिकार ही नहीं है...' ऐसा सोचकर मन-ही-मन प्रणाम किया । उसका यह शुभ भाव देखकर जोगी हरनाथ मन-ही-मन खूब प्रसन्न हुए और मधुर वाणी में बोले :

''रामखान ! लोग तुझे डाकू कहते हैं, यह तेरी प्रकृति के गुणों का काम है । तू अपने आत्मस्वरूप को पहचानने के लिए भगवान के नाम की थोड़ी सहायता ले । प्राणायाम, ध्यान और भगवन्नाम का सहारा, ये तीन चीजें तुझे शुद्ध कर देंगी । तू ध्यान की विधि मुझसे सीख ले । भगवन्नाम की दीक्षा ले ले । प्राणायाम करने की कला सीख ले । तेरे सारे पाप जल जायेंगे और तेरी छुपी हुई शक्तियाँ जागृत होंगी, वत्स !''

उस डाकू को संत हरनाथ वत्स कह रहे हैं, पुत्र कह रहे हैं !

''तूने संत के आगे पापों का प्रायश्चित किया। अब तेरे पाप रहे कहाँ ? पाप तो जल गये। अब पुण्यों को और प्रभु को प्रगट करना ही तेरा कर्त्तव्य है। 'मैं पापी हूँ... मैं डाकू हूँ...' यह चिन्तन मत कर। तूने अपने पाप-ताप मेरे आगे रख दिये। अब वे सब प्रायश्चित की अग्नि में स्वाहा हो गये।''

साधुसंग अति पापी को भी पुण्यात्मा बना देता है, अति घृणित को भी श्रेष्ठ बनाने का सामर्थ्य रखता है। डाकू रामखान महात्मा से दीक्षित हुआ, उसे सच्चे प्रेम की एक निगाह मिली। उसने संसार के कँटीले मार्ग का त्याग करके संन्यास मार्ग को ग्रहण किया। गुरु महाराज के उपदेश के अनुसार श्रीकृष्ण की लीलास्थली वृंदावन में रहने लगा। थोड़े ही समय में उसकी सुषुप्त शक्तियाँ जागृत हुईं। प्राणायाम आदि से क्रियाशक्ति में बढ़ोत्तरी हुई। भगवन्नाम से हृदय-केन्द्र विकसित हुआ। गुरु महाराज के सत्संग से ज्ञान का केन्द्र विकसित हुआ। तीन शक्तियों को विकसित करके संसार के तीन गुणों से पार होने लगा। वह एक सिद्ध संन्यासी हो गया।

कहाँ तो एक खूँखार डाकू और कहाँ एक सिद्ध संन्यासी ! मनुष्य में बहुत सारी संभावनाएँ हैं, बहुत सारी योग्यताएँ छिपी हुई हैं। प्रेम, सद्भावना, शुभकामना उसका मंगल करती हैं। संत का संग एवं कृपा बहुत कुछ कर जाती है।

'ऋषि प्रसाद' अभियान –दिल्ली

काल के भी जागे भाग, ब्रह्मज्ञानी से नूर जो पाया है।
निन्यानवे वर्ष वर्ष ही नहीं, 'ऋषि प्रसाद' वर्ष कहलाया है ॥
छल-छला-छल छलका, हरिरस यूँ छलकाया है।
सवा लाख को पूर्ण किया, अब ढाई लक्ष्य बनाया है ॥
उठो साधकों ! कसो कमर, फिर संकल्प जगाना है।
पूरन कर 'अभियान वर्ष' में, आशिष गुरु की पाना है ॥
ऋषियों का ऋण हम सब पर है,
हमको इसे चुकाना है।
रहे ना कोई कोना देश का,
घर-घर 'ऋषि प्रसाद' पहुँचाना है ॥

- सुरेश कपूर, दिल्ली।

एकादशी-माहात्म्य

[निर्जला एकादशी : १२ जून २०००]

युधिष्ठिर ने कहा : ''जनार्दन ! ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में जो एकादशी पड़ती हो, कृपया उसका वर्णन कीजिये।''

भगवान श्रीकृष्ण बोले : ''राजन् ! इसका वर्णन परम धर्मात्मा सत्यवतीनन्दन व्यासजी करेंगे, क्योंकि ये सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्त्वज्ञ और वेद-वेदांगों के पारंगत विद्वान् हैं।''

तब वेदव्यासजी कहने लगे : ''दोनों ही पक्षों की एकादशियों के दिन भोजन न करे। द्वादशी के दिन स्नान आदि से पवित्र हो फूलों से भगवान केशव की पूजा करे। फिर नित्य कर्म समाप्त होने के पश्चात् पहले ब्राह्मणों को भोजन देकर अन्त में स्वयं भोजन करे। राजन् ! जननाशौच और मरणाशौच में भी एकादशी को भोजन नहीं करना चाहिए।''

यह सुनकर भीमसेन बोले : ''परम बुद्धिमान् पितामह ! मेरी उत्तम बात सुनिये। राजा युधिष्ठिर, माता कुन्ती, द्रौपदी, अर्जुन, नकुल और सहदेव ये एकादशी को कभी भोजन नहीं करते तथा मुझसे भी हमेशा यही कहते हैं कि : 'भीमसेन ! तुम भी एकादशी को न खाया करो...' किन्तु मैं उन लोगों से यही कहता हूँ कि मुझसे भूख नहीं सही जायेगी।''

भीमसेन की बात सुनकर व्यासजी ने कहा : ''यदि तुम्हें स्वर्गलोक की प्राप्ति अभीष्ट है और नरक को दूषित समझते हो तो दोनों पक्षों की एकादशियों के दिन भोजन न करना।''

भीमसेन बोले : ''महाबुद्धिमान् पितामह ! मैं आपके सामने सच्ची बात कहता हूँ। एक बार भोजन करके भी मुझसे व्रत नहीं किया जा सकता, फिर उपवास करके तो मैं रह ही कैसे सकता हूँ ? मेरे उदर में वृक नामक अग्नि सदा प्रज्वलित रहती है, अतः जब मैं बहुत अधिक खाता हूँ, तभी यह शांत होती है। इसलिये महामुने ! मैं वर्षभर में केवल एक ही उपवास कर सकता हूँ। जिससे स्वर्ग की प्राप्ति सुलभ हो तथा जिसके करने से मैं कल्याण का भागी हो सकूँ, ऐसा कोई एक व्रत निश्चय

करके बताइये। मैं उसका यथोचित रूप से पालन करूँगा।''

व्यासजी ने कहा : ''भीम ! ज्येष्ठ मास में सूर्य वृष राशि पर हो या मिथुन राशि पर, शुक्ल पक्ष में जो एकादशी हो, उसका यत्नपूर्वक निर्जल व्रत करो। केवल कुल्ला या आचमन करने के लिये मुख में जल डाल सकते हो, उसको छोड़कर किसी प्रकार का जल विद्वान् पुरुष मुख में न डाले, अन्यथा व्रत भंग हो जाता है। एकादशी को सूर्योदय से लेकर दूसरे दिन के सूर्योदय तक मनुष्य जल का त्याग करे तो यह व्रत पूर्ण होता है। तदनन्तर द्वादशी को प्रभातकाल में स्नान करके ब्राह्मणों को विधिपूर्वक जल और सुवर्ण का दान करे। इस प्रकार सब कार्य पूरा करके जितेन्द्रिय पुरुष ब्राह्मणों के साथ भोजन करे। वर्षभर में जितनी एकादशियाँ होती हैं, उन सबका फल निर्जला एकादशी के सेवन से मनुष्य प्राप्त कर लेता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान केशव ने मुझसे कहा था कि : 'यदि मानव सबको छोड़कर एकमात्र मेरी शरण में आ जाय और एकादशी को निराहार रहे तो वह सब पापों से छूट जाता है।'

एकादशी व्रत करनेवाले पुरुष के पास विशालकाय, विकराल आकृति और काले रंगवाले दण्ड-पाशधारी भयंकर यमदूत नहीं जाते। अन्तकाल में पीताम्बरधारी, सौम्य स्वभाववाले, हाथ में सुदर्शन धारण करनेवाले और मन के समान वेगशाली विष्णुदूत आखिर इस वैष्णव पुरुष को भगवान विष्णु के धाम में ले जाते हैं। अतः निर्जला एकादशी को पूर्ण यत्न करके उपवास और श्रीहरि का पूजन करो। स्त्री हो या पुरुष, यदि उसने मेरु पर्वत के बराबर भी महान् पाप किया हो तो वह सब इस एकादशी व्रत के प्रभाव से भस्म हो जाता है। जो मनुष्य उस दिन जल के नियम का पालन करता है, वह पुण्य का भागी होता है। उसे एक-एक प्रहर में कोटि-कोटि स्वर्णमुद्रा दान करने का फल प्राप्त होता सुना गया है। मनुष्य निर्जला एकादशी के दिन स्नान, दान, जप, होम आदि जो कुछ भी करता है, वह सब अक्षय होता है, यह भगवान श्रीकृष्ण का कथन है। निर्जला एकादशी को विधिपूर्वक उत्तम रीति से उपवास करके मानव वैष्णवपद को प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य एकादशी के दिन अन्न खाता है, वह पाप का भोजन करता है। इस लोक में वह चाण्डाल के समान है और मरने पर दुर्गति को प्राप्त होता है।

जो ज्येष्ठ के शुक्लपक्ष में एकादशी को उपवास करके दान देंगे, वे परम पद को प्राप्त होंगे। जिन्होंने एकादशी को उपवास किया है, वे ब्रह्महत्यारे, शराबी, चोर तथा गुरुद्रोही होने पर भी सब पातकों से मुक्त हो जाते हैं।

कुन्तीनन्दन ! निर्जला एकादशी के दिन श्रद्धालु स्त्री-पुरुषों के लिये जो विशेष दान और कर्त्तव्य विहित हैं, उन्हें सुनो : उस दिन जल में शयन करनेवाले भगवान विष्णु का पूजन और जलमयी धेनु का दान करना चाहिए। अथवा प्रत्यक्ष धेनु या घृतमयी धेनु का दान उचित है। पर्याप्त दक्षिणा और भाँति-भाँति के मिष्ठान्नों द्वारा यत्नपूर्वक ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करना चाहिए। ऐसा करने से ब्राह्मण अवश्य संतुष्ट होते हैं और उनके संतुष्ट होने पर श्रीहरि मोक्ष प्रदान करते हैं। जिन्होंने शम, दम और दान में प्रवृत्त हो श्रीहरि की पूजा और रात्रि में जागरण करते हुए इस निर्जला एकादशी का व्रत किया है, उन्होंने अपने साथ ही बीती हुई सौ पीढ़ियों को और आनेवाली सौ पीढ़ियों को भगवान वासुदेव के परम धाम में पहुँचा दिया है। निर्जला एकादशी के दिन अन्न, वस्त्र, गौ, जल, शय्या, सुन्दर आसन, कमण्डलु तथा छाता दान करने चाहिए। जो श्रेष्ठ एवं सुपात्र ब्राह्मण को जूता दान करता है, वह सोने के विमान पर बैठकर स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है। जो इस एकादशी की महिमा को भक्तिपूर्वक सुनता अथवा उसका वर्णन करता है, वह स्वर्गलोक में जाता है। चतुर्दशीयुक्त अमावस्या को सूर्यग्रहण के समय श्राद्ध करके मनुष्य जिस फल को प्राप्त करता है, वही फल इसके श्रवण से भी प्राप्त होता है। पहले दन्तधावन करके यह नियम लेना चाहिए कि : 'मैं भगवान केशव की प्रसन्नता के लिये एकादशी को निराहार रहकर आचमन के सिवा दूसरे जल का भी त्याग करूँगा।' द्वादशी को देवेश्वर भगवान विष्णु का पूजन करना चाहिए। गन्ध, धूप, पुष्प और सुन्दर वस्त्र से विधिपूर्वक पूजन करके जल के घड़े का संकल्प करते हुए निम्नांकित मंत्र का उच्चारण करे :

देवदेव हृषीकेश संसारार्णवतारक।
उदकुम्भप्रदानेन नय मां परमां गतिम्॥

'संसारसागर से तारनेवाले हे देवदेव हृषीकेश ! इस जल के घड़े का दान करने से आप मुझे परम गति की प्राप्ति कराइये।' (५३.६०)

भीमसेन ! ज्येष्ठ मास में शुक्ल पक्ष की जो शुभ एकादशी होती है, उसका निर्जल व्रत करना चाहिए। उस दिन श्रेष्ठ ब्राह्मणों को शक्कर के साथ जल के घड़े दान करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य भगवान विष्णु के समीप पहुँचकर आनन्द का अनुभव करता है। तत्पश्चात् द्वादशी को ब्राह्मण-भोजन कराने के बाद स्वयं भोजन करे। जो इस प्रकार पूर्ण रूप से पापनाशिनी एकादशी का व्रत करता है, वह सब पापों से मुक्त हो अनामय पद को प्राप्त होता है।''

यह सुनकर भीमसेन ने भी इस शुभ एकादशी का व्रत आरम्भ कर दिया। तब से यह लोक में 'पाण्डव द्वादशी' के नाम से विख्यात हुई।

महात्मा गाँधी की नजर में ईसाई मिशनरियाँ

लेखक : डा. कमल किशोर गोयनका

ईसाई मिशनरियों का विचार था कि गाँधी को ईसाई बना लिया जाए तो भारत को ईसाई देश बनाना बहुत आसान हो जायेगा।

दक्षिण अफ्रीका में कई बार ऐसे प्रयत्न हुए और भारत आने पर कई पादरियों, ईसाई मिशनरियों तथा ८० वर्ष के ए. डब्ल्यू. बेकर, ८६ वर्ष की एमिली किनेर्डके जैसे अनेक ईसाइयों ने उन्हें ईसाई बनाने के लिए प्रेरित किया और यहाँ तक कहा कि : 'यदि आपने ईसा मसीह को स्वीकार नहीं किया तो आपका उद्धार नहीं होगा।'

('हारेजन' : ४ अगस्त, १९४०)

गाँधीजी ईसा मसीह और उनके जीवन तथा 'बाइबिल' एवं ईसाई सिद्धान्तों की परम्परागत ईसाई व्याख्या को अस्वीकार करते हुए अपनी व्याख्या प्रस्तुत करते थे। उन्होंने १६ जून, १९२७ को डब्ल्यू. बी. स्टोवर को पत्र में लिखा भी था कि : ''मैं 'बाइबिल' या 'ईसा' के जीवन की परम्परागत व्याख्या को स्वीकार नहीं करता हूँ।''

गाँधीजी ने प्रमुख रूप से ईसा के 'देवत्व' तथा 'अवतार' स्वरूप का खंडन किया।

उन्होंने आर. ए. ह्यूम को १३ फरवरी, १९२६ को पत्र में लिखा : ''मैं ईसा मसीह को ईश्वर का एकमात्र पुत्र या ईश्वर का अवतार नहीं मानता, लेकिन मानव जाति के एक शिक्षक के रूप में उनके प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा है।''

गाँधीजी ने अनेक बार कहा और लिखा कि वे ईसा को अन्य महात्माओं और शिक्षकों की तरह 'मानव प्राणी' ही मानते हैं। ऐसे शिक्षक के रूप में वे 'महान्' थे परन्तु 'महानतम' नहीं थे। (गाँधी वाङ्मय : खंड ३४, पृ. ११)

गाँधीजी ने ईसा को 'ईश्वर का एकमात्र पुत्र' होने की ईसाई धारणा का भी खंडन किया और ४ अगस्त १९४० को 'हरिजन' में लिखा : ''वे ईश्वर के एक पुत्र भर थे, चाहे हम सबसे कितने ही पवित्र क्यों न रहे हों। परन्तु हममें से हर एक ईश्वर का पुत्र है और हर कोई वही काम करने की क्षमता रखता है जो ईसा मसीह ने कर दिखाया था, बशर्ते कि हम अपने भीतर विद्यमान दिव्यत्व को व्यक्त करने की कोशिश करें।'' इसके साथ गाँधीजी ने ईसा के चमत्कारों का सतर्क भाषा में खंडन किया।

महात्मा गाँधी ने ईसाई अन्धविश्वासों का अनेक रूपों में खंडन किया। 'ईसा मुक्ति के लिए आवश्यक हैं...' उनकी इस मान्यता का उन्होंने अस्वीकार किया।

(११ दिसम्बर, १९२७ का पत्र)

उन्होंने ईसा द्वारा सारे पापों को धो डालने की बात का भी सतर्क खंडन किया। ('यंग इंडिया' : २२ दिसम्बर, १९२७)

गाँधीजी ने यह भी अस्वीकार किया कि 'धर्मांतरण ईश्वरीय कार्य है।' उन्होंने ए. ए. पॉल को उत्तर देते हुए 'हरिजन' के २८ दिसम्बर, १९३५ के अंक में लिखा कि ईसाई धर्म-प्रचारकों का यह कहना कि : 'वे लोगों को ईश्वर के पक्ष में खींच रहे हैं और ईश्वरीय कार्य कर रहे हैं...' तो मनुष्य ने यह कार्य उसके हाथों से क्यों ले लिया है ? ईश्वर से कोई कार्य छीननेवाला मनुष्य कौन होता है तथा क्या सर्वशक्तिमान् ईश्वर इतना असहाय है कि वह मनुष्यों को अपनी ओर नहीं खींच सकता ?

(गाँधी वाङ्मय : खंड ६१, पृ. ८७ तथा ४९४)

गाँधीजी ने लंदन में ८ अक्टूबर, १९३१ को ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड की मिशनरी संस्थाओं के सम्मेलन में ईसाइयों के सम्मुख कहा कि 'गॉड के रूप में ईश्वर की, जो सबका पिता है, पूजा करना मेरे लिए उचित नहीं होगा। यह नाम मुझ पर कोई प्रभाव नहीं डालता, पर जब मैं ईश्वर को 'राम' के रूप में सोचता हूँ तो वह मुझे पुलकित कर देता है। ईश्वर को 'गॉड' के रूप में सोचने से मुझमें वह भावावेश नहीं आता जो 'राम' के नाम से आता है। उसमें कितनी कविता है ! मैं जानता हूँ कि मेरे पूर्वजों ने उसे 'राम' के रूप में ही जाना है। वे राम के द्वारा ही ऊपर उठे हैं और मैं जब राम का नाम लेता हूँ तो उसी शक्ति से ऊपर उठता हूँ। मेरे लिए 'गॉड' नाम का प्रयोग, जैसा कि वह 'बाइबिल' में प्रयुक्त हुआ है, सम्भव नहीं होगा। उसके द्वारा सत्य की ओर मेरा उठना मुझे सम्भव नहीं लगता। इसलिए मेरी समूची आत्मा आपकी इस शिक्षा को अस्वीकार करती है कि 'राम' मेरा ईश्वर नहीं है।'

(गाँधी वाङ्मय : खंड ४८, पृ. १४१)

महात्मा गाँधी ने २ मई, १९३३ को पं. जवाहरलाल नेहरू को पत्र में लिखा : ''हिन्दुत्व के द्वारा मैं ईसाई, इस्लाम और कई दूसरे धर्मों से प्रेम करता हूँ। यह छीन लिया जाये तो मेरे पास रह ही क्या जाता है ?'' ...और इसीलिए वे हिन्दू धर्म की रक्षा करना चाहते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि : ''हिन्दू धर्म की सेवा और हिन्दू धर्म की रक्षा को छोड़कर मेरी कोई दूसरी प्रवृत्ति ही नहीं है।''

(गाँधी वाङ्मय : खंड ३७, पृ. १००)

गाँधीजी एक और तर्क देते हैं। वे कहते हैं कि : ''धर्म ऐसी वस्तु नहीं जो वस्त्र की तरह अपनी सुविधा के लिए बदला जा सके। धर्म के लिए तो मनुष्य विवाह, घर-संसार तथा देश तक को छोड़ देता है।''

(मणिलाल गाँधी को लिखे पत्र से, ३ अप्रैल, १९२६)

ईसाई मिशनरियों का यह तर्क था कि वे भारत को शिक्षित, संस्कारी तथा धार्मिक बनाना चाहते हैं, तो गाँधीजी ने इन मिशनरियों से कहा कि : ''जो भारतवर्ष का धर्मपरिवर्तन करना चाहते हैं, उनसे यही कहा जा सकता है कि : हकीमजी पहले अपना इलाज कीजिए न ?''

('यंग इंडिया' : २३ अप्रैल, १९३१)

गाँधीजी आगे कहते हैं कि : ''भारत को कुछ सिखाने से पहले यहाँ से कुछ सीखना, कुछ ग्रहण करना होगा।''

('यंग इंडिया' : ११ अगस्त, १९२७)

'क्या मनुष्य का धर्मान्तरण हो सकता है ?' महात्मा गाँधी ने अनेक बार इस प्रश्न का भी उत्तर दिया था। उनका मत था कि यह सम्भव नहीं है, क्योंकि कोई भी पादरी या धर्म-प्रचारक नये अनुयायी को यह कैसे बतलायेगा कि 'बाइबिल' का वह अर्थ ले जो वह स्वयं लेता है ? कोई भी पादरी या मिशनरी 'बाइबिल' से जो प्रकाश स्वयं लेता है, उसे किसी भी दूसरे मनुष्य के हृदय में शब्दों के द्वारा उतारना सम्भव नहीं है।''

('हरिजन' : १२ दिसम्बर, १९३६)

गाँधीजी कई बार नये बने ईसाइयों की दुश्चरित्रता तथा मिशनरियों के कुकृत्यों का उल्लेख करते हैं। वे अपनी युवावस्था की एक घटना की चर्चा करते हुए कहते हैं :

''मुझे याद है, जब मैं नौजवान था उस समय एक हिन्दू ईसाई बन गया था। शहर भर जानता था कि नवीन धर्म में दीक्षित होने के बाद वह संस्कारी हिन्दू ईसा के नाम पर शराब पीने लगा, गोमांस खाने लगा और उसने अपना भारतीय लिबास छोड़ दिया। आगे चलकर मुझे मालूम हुआ, मेरे अनेक मिशनरी मित्र तो यही कहते हैं कि अपने धर्म को छोड़नेवाला ऐसा व्यक्ति बन्धन से छूटकर मुक्ति और दारिद्र्य से छूटकर समृद्धि प्राप्त करता है।''

('यंग इंडिया' : २० अगस्त, १९२५)

वे 'हरिजन', ११ मई, १९३५ में लिखते हैं :

''अभी कुछ दिन हुए, एक मिशनरी एक दुर्भिक्षपीड़ित अंचल में पैसा लेकर पहुँच गया। अकालपीड़ितों को उसने पैसा बाँटा, उन्हें ईसाई बनाया, फिर उनका मंदिर हथिया लिया और उसे तुड़वा डाला। यह अत्याचार नहीं तो क्या है ? जिन हिन्दुओं ने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था, उनका अधिकार तो उस मंदिर पर रहा नहीं था और ईसाई मिशनरी का भी उस पर कोई हक नहीं था, पर वह मिशनरी वहाँ पहुँचता है और जो कुछ ही समय पहले यह मानते थे कि उस मंदिर में ईश्वर का वास है, उन्हीं के हाथ से उसे तुड़वा डालता है।''

(गाँधी वाङ्मय : खंड ६१, पृ. ४९)

गाँधीजी ईसाई धर्म के एक और 'व्यंग्य चित्र' की ओर मिशनरियों का ध्यान आकर्षित करते हैं कि यदि मिशनरियों की संख्या बढ़ती है तो हरिजनों में आपस में ही लड़ाई-झगड़े और खून-खराबे की घटनाएँ बढ़ेंगी।

गाँधीजी इसी कारण ईसाइयों के धर्मान्तरण को 'अशोभन', 'दूषित', 'हानिकारक', 'संदेह एवं संघर्षपूर्ण', 'अध्यात्मविहीन', 'भ्रष्ट करनेवाला', 'सामाजिक ढाँचे को तोड़नेवाला' तथा 'प्रलोभनों से पूर्ण' कहते हैं। गाँधीजी का सम्पूर्ण वाङ्मय पढ़ जायें, ऐसी ही कटु आलोचनाओं से भरा पड़ा है।

गाँधीजी ने ईसाई मिशनरियों द्वारा चिकित्सा एवं शिक्षा के क्षेत्र में किये गये कार्यों की कई बार प्रशंसा भी की, किन्तु उन्होंने इसके मूल में विद्यमान प्रलोभनों तथा उनके धर्मपरिवर्तन के उद्देश्य पर गहरी चोट करते हुए एक मिशनरी से कहा : ''जब तक आप अपनी शिक्षा और चिकित्सा संस्थानों से धर्मपरिवर्तन के पहलू को हटा नहीं देते, तब तक उनका मूल्य ही क्या है ? मिशन स्कूलों और कॉलेजों में पढ़नेवाले छात्रों को 'बाइबिल' की कक्षाओं में भाग लेने को बाध्य क्यों किया जाता है या उनसे इसकी अपेक्षा ही क्यों की जाती है ? यदि उनके लिए ईसा के संदेशों को समझना जरूरी है तो बुद्ध और मुहम्मद के संदेश को समझना जरूरी क्यों नहीं है ? धर्म की शिक्षा के लिए शिक्षा का प्रलोभन क्यों देना चाहिए ?'' ('हरिजन' : १७ अप्रैल, १९३७)

चिकित्सा-क्षेत्र में गाँधीजी ने ईसाइयों द्वारा कोढ़ियों की सेवा करने की भी तारीफ की, लेकिन यह भी कहा कि : ''ये ईसाई सारे रोगियों और सारे सहयोगियों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे धर्मपरिवर्तन करके ईसाई बन

जायें।'' ('हरिजन' : २५ फरवरी, १९३९)

गाँधीजी इन प्रलोभनों की धर्मनीति से व्याकुल थे। वे जानते थे कि अमेरिका तथा इंग्लैण्ड से ईसाई मिशनरियों के पास खूब धन आता है और उसका उपयोग मूलतः धर्मपरिवर्तन के लिए ही होता है। अतः उन्होंने स्पष्ट कहा कि : ''आप 'ईश्वर' और 'अर्थ-पिशाच' दोनों की सेवा एक साथ नहीं कर सकते।''

('यंग इंडिया' : ८ दिसम्बर, १९२७)

इसके दस वर्ष के बाद गाँधीजी जॉन आर. मॉट से यही बात कहते हुए बोले कि : ''मेरा निश्चित मत है कि अमेरिका और इंग्लैण्ड मिशनरी संस्थाओं के निमित्त जितना पैसा देता है, उससे लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक हुई है। ईश्वर और धनासुर (मेमन) को एक साथ नहीं साधा जा सकता। मुझे तो ऐसी आशंका है कि भारत की सेवा करने के लिए धनासुर को ही भेजा गया है, ईश्वर पीछे रह गया है। परिणामतः वह एक-न-एक दिन उसका प्रतिशोध अवश्य करेगा।'' ('हरिजन' : २६ दिसम्बर, १९३६)

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय और मानवीय दोनों ही दृष्टियों से ईसाई मिशनरियों से अपनी रीति-नीति, आचरण-व्यवहार तथा सिद्धान्त-कल्पनाओं को बदलने तथा विवेकसम्मत बनाने का आह्वान करते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि परोपकार का काम करो, धर्मान्तरण बन्द करो।

('हिन्दू' : २८ फरवरी, १९१६)

गाँधीजी १४ जुलाई १९२७ को 'यंग इंडिया' में लिखते हैं कि : ''मिशनरियों को अपना रवैया बदलना होगा। आज वे लोगों से कहते हैं कि उनके लिए 'बाइबिल' और ईसाई धर्म को छोड़कर मुक्ति का और कोई मार्ग नहीं है। अन्य धर्मों को तुच्छ बताना तथा अपने धर्म को मोक्ष का एकमात्र मार्ग बताना उनकी आम रीति हो गयी है। इस दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन होना चाहिए।''

एक ईसाई मिशनरी से बातचीत में उन्होंने कहा :

''अगर मेरे हाथ में सत्ता हो और मैं कानून बना सकूँ तो मैं धर्मान्तरण का यह सारा कारोबार ही बन्द करा दूँ। इससे वर्ग-वर्ग के बीच निश्चय ही निरर्थक कलह और मिशनरियों के बीच बेकार का द्वेष बढ़ता है। यों किसी भी राष्ट्र के लोग सेवाभाव से आयें तो मैं स्वागत करूँगा। हिन्दू कुटुम्बों में मिशनरी के प्रवेश से वेशभूषा, रीति-रिवाज, भाषा और खान-पान तक में परिवर्तन हो गया है और इन सबका नतीजा यह हुआ है कि सुन्दर हरे-भरे कुटुम्ब छिन्न-भिन्न हो गये हैं।'' ('हरिजन' : ११ मई, १९३५)

महात्मा गाँधी जैसे सहिष्णु एवं विवेकी व्यक्ति भी स्वतंत्र भारत में कानून बनाकर ईसाई धर्मान्तरण पर प्रतिबन्ध का प्रस्ताव करते हैं और निस्संकोच अपना संकल्प ईसाइयों के सम्मुख रखते हैं।

गाँधीजी के उत्तराधिकारियों जैसे पंडित जवाहरलाल नेहरू आदि ने उनके विचारों की उपेक्षा की और उसका दुःखद परिणाम आज सामने है। देश के कुछ प्रदेशों में ईसाईकरण ने सुरक्षा और एकता के लिए समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं और अब वे पंजाब, हिमाचल प्रदेश आदि नये स्थानों पर भी गिरजाघर बनाने जा रहे हैं। विदेशी धन का प्रवाह पहले से कई गुना बढ़ गया है और ईसाई मिशनरियाँ आक्रामक बनती जा रही हैं।

गाँधीजी ने अपने विवेक, दूरदृष्टि तथा मानव-प्रेम के कारण ईसाइयों के उद्देश्यों को पहचाना था तथा उनके बीच जाकर उन्हें अधार्मिक तथा अमानवीय कार्य करने से रोकने का भी प्रयत्न किया था। उनके इस राष्ट्रीय कार्य को अब हमें क्रियान्वित करना है। ईसाई मिशनरियों को धर्मान्तरण से तत्काल रोकना होगा। हमारी सरकार को इसे गम्भीरता से लेना चाहिए, अन्यथा गाँधीजी के अनुसार संघर्ष और रक्तपात को रोकना असम्भव हो सकता है।

गाँधीजी की कामना थी कि आदिवासियों (भील जाति) के मंदिर में राम की मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा हो, ईसा मसीह की नहीं, क्योंकि इससे ही इन जातियों में नये प्राणों का संचार होगा। ('नवजीवन' : १८ अप्रैल, १९३६)

राष्ट्र के मानवमंदिर में भी स्वदेशी ईश्वर की प्राण-प्रतिष्ठा से ही हमारा कल्याण हो सकता है और यह 'हरा-भरा' देश 'छिन्न-भिन्न' होने से बचाया जा सकता है।

[विशेष सूचना : कोई भी इस लेख के परचे छपवाकर देश को तोड़नेवालों से भारत देश की रक्षा कर सकता है।]

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीआर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जाएगी।
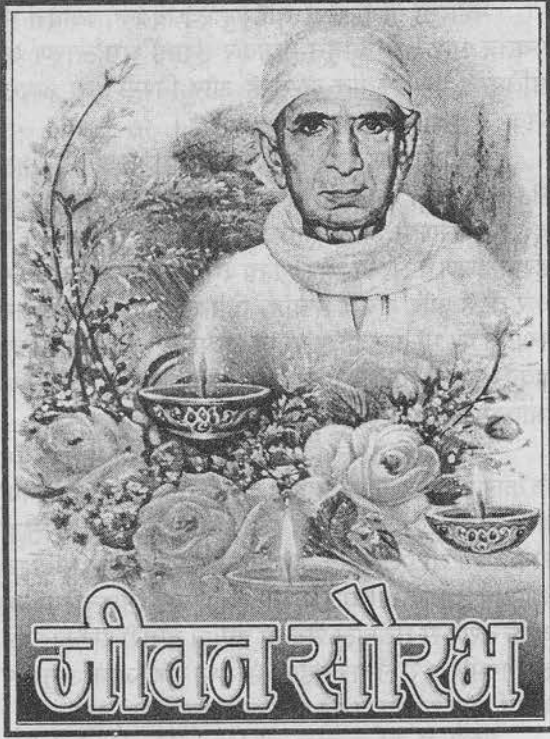
योगसिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ
प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री

लीलाशाहजी महाराज : एक दिव्य विभूति

[गतांक का शेष]

आनन्द का उद्‌गम-स्थान क्या है ?

६ जून १९६२, नैनीताल आश्रम।

संतोष सुमति सादगी, बक्ष करो भगवान।
सबका बेड़ा पार हो, दीजिए भक्ति ज्ञान ॥

समझदार लोग समझते हैं कि दुनिया के विषयों में, पदार्थों में वास्तविक सुख नहीं है।...तो वास्तविक सुख कहाँ है ? हम जब प्रगाढ़ निद्रा में से जागते हैं तब आनन्द भासता है। इससे सिद्ध होता है कि सुख अथवा आनन्द विषयों के, पदार्थों के बिना भी विद्यमान है। प्रगाढ़ निद्रा में कोई भी पदार्थ उपस्थित नहीं है फिर भी सुखानुभूति है। नींद में से उठने के बाद जब आप कहते हो कि 'खूब शांति से सोया...' तब आपका कथन यह बताता है कि गहरी नींद अथवा सुषुप्ति अवस्था में आनन्द है। उस अवस्था में आनन्द क्यों मिलता है ? क्योंकि उस अवस्था में मन एकाग्र हो जाता है और अन्तःकरण की उस अवस्था में आत्मा की छाया पड़ती है तब सुख मिलता है अथवा आनन्द की अनुभूति होती है।

जब हमें कोई इच्छित वस्तु मिलती है अथवा कोई सगे-सम्बन्धी मिलते हैं तब हमें आनन्द होता है। उस समय हम समझते हैं कि वह आनन्द या प्रसन्नता वस्तु अथवा सगे-सम्बन्धियों के मिलने से प्राप्त हुई, परन्तु वास्तव में वह आनन्द उनमें से नहीं मिलता। कई बार हम महसूस करते हैं कि जब हम स्वस्थ नहीं होते तब उस वस्तु अथवा सगे-सम्बन्धी के मिलने पर आनन्द नहीं मिलता। स्वस्थ व्यक्ति को इच्छित वस्तु अथवा सगे-सम्बन्धी के मिलने पर खुशी इसलिए होती है कि उस समय उसका मन बीमार अवस्था की अपेक्षा ज्यादा स्थिर और एकाग्र होता है। बीमार अवस्था में मन ठीक से स्थिर और एकाग्र नहीं होता, चंचल होता है इसलिए वे चीजें मिलने के बावजूद भी आनन्द नहीं मिलता।

इससे हम समझ सकते हैं कि रमणीय वस्तु अथवा सगे-सम्बन्धियों में आनन्द नहीं है। यदि उनमें आनन्द होता तो अस्वस्थता एवं नीरोगता दोनों अवस्थाओं में वह आनन्द समान रूप से मिलना चाहिए था। याद रखो कि आनन्द तो भगवद्स्वरूप आत्मा में है। मन एकाग्र बनता है तब उसमें आत्मा की छाया पड़ती है इसलिए आनन्द मिलता है। चंचल मन में आत्मा की छाया ठीक से नहीं पड़ती इसलिए आनन्द नहीं मिलता।

आत्मा के संयोग से आनन्द मिलता है। आनन्द मन में अथवा वस्तु में नहीं, अपितु आत्मा में है और जो आनन्द होता है वह आत्मा का स्पन्दनमात्र है। आनन्द बाहर नहीं है।

जिन विषयों में आनन्द भासित होता है वह आनन्द तो कृत्रिम है। उदाहरणार्थ : फोड़ा हुआ और उस पर पट्टी बाँधी तो फोड़ा फूट गया और सुख हुआ कि आज ठीक है। अब वह सुख मलहम अथवा पट्टी

अथवा फोड़े में से नहीं निकला। फोड़ा होने के पहले जो सुख था वह सुख ओझल हो गया था जो अब पुनः प्रगट हुआ। कोई नया सुख नहीं मिला। किन्तु दुःख देखे बिना सुख समझ में नहीं आता, सुख की कद्र नहीं होती, अन्यथा आत्मा का सुख तो निरन्तर बना हुआ है।

दूसरा उदाहरण देखें : जब तालाब का जल स्थिर और स्वच्छ होता है तब उसके तले की रेती दिखती है किन्तु पानी अगर चंचल और मैला होता है तो तालाब का तल नहीं दिखाई देता।

मनरूपी जल स्थिर और स्वच्छ होता है तो तलरूपी आनन्द तो विद्यमान है ही। इच्छाओं के कारण मटमैला हुआ मनरूपी पानी तलरूपी आनन्द को नहीं दिखाता इसीलिए सुखानुभूति के लिए मन स्थिर होना चाहिए।

पदार्थों में सुखानुभूति करते समय मनुष्य वास्तव में अपनी आत्मा का ही आनन्द लेते हैं और उस आनन्द को पदार्थों में आरोपित कर देते हैं। प्रत्येक सुख शुद्ध आनन्द के भण्डार में से ही आता है किन्तु भूला हुआ जीव आनन्द के उद्‌गम-स्थान पर, मूल पद पर नहीं आता।

यदि मनुष्य की दृष्टि बदल जाये तो यह सत्य समझा जा सकता है। वस्तु में आनन्द मानने की आदत पड़ गई है। वस्तुतः उससे आनन्द प्रगटता नहीं। सूखी हड्डी चबाते हुए कुत्ते के जबड़े में उस हड्डी के कारण जख्म हो जाता है और उससे खून निकलता है। कुत्ते को उस खून का स्वाद आता है। वह समझता है कि खून हड्डी में से निकल रहा है। वह ऐसा नहीं जानता कि यह तो उसका खुद का ही खून है। हड्डी में खून कहाँ से आयेगा ?

लाखों में से किसी एक विरले को ही सच्चे सुख अथवा आनन्द का ज्ञान होता है। हम सब सुख तो चाहते हैं परन्तु समझते हैं कि सुख इन्द्रियों अथवा विषयों में यानी शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध में है, परन्तु वह सच्चा सुख नहीं है। सच्चा सुख तो आत्मा में है। उस सुख की झलक यदि एक बार भी मिल जाये तो फिर संसार के भोग और संसार के पदार्थ फीके लगेंगे और मन बार-बार उस आत्मसुख की ओर दौड़ेगा।

अतः संसार में होते हुए भी हृदय में निरन्तर भगवान का स्मरण करते रहो। कर्म करते हुए भी अकर्त्ता-अभोक्ता होकर रहो। खराब संग, खराब विचार, खराब कर्म से हमेशा दूर रहो। सदैव भलाई के और पुण्य के कार्य करते रहो। सच्चे संकल्प एवं शुभ विचारों से, भलाई के कर्म करने से अन्तःकरण निर्मल होगा। ऐसा करने से अन्तःकरण में संसार की जगह परमात्मा का स्मरण बढ़ जायेगा और सच्चा सुख एवं शांति मिलेगी। (क्रमशः)

*

गंगा माँ की कृपा से सद्गुरु की प्राप्ति

जब मेरी आयु १३ वर्ष की थी तब मैं सद्गुरु की खोज में घर छोड़कर मुजफ्फरनगर (उ. प्र.) में संत शुकदेव की भूमि शुक्रताल पहुँचा। मेरे माता-पिता वहाँ से मुझे वापस ले आये। उसके बाद समय-समय पर मैं सद्गुरु की खोज में हरिद्वार, हृषीकेश, मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, बनारस (वाराणसी) इलाहाबाद, अल्मोड़ा (शितला खेत) आदि अनेक धार्मिक नगरियों के आश्रमों, मंदिरों, मठों आदि सभी जगह गया परन्तु तारणहार आत्मवेत्ता सद्गुरु नहीं मिले। फिर मैंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्त्ता के रूप में प्रचार किया परन्तु आत्मशांति फिर भी न मिली। उसके बाद मैंने डोंगरेजी महाराज, मुरारी बापू, आर्य समाज के विद्वानों की कथाओं का श्रवण किया और १९८७ में वृन्दावन के पास यमुना किनारे बने आश्रम में संत श्री देवरहा बाबा के कई बार दर्शन किये जो पैर के अँगूठे से आशीर्वाद देते थे। वृन्दावन (बरसाने) में श्री राधे का मंदिर एवं गिरिराज की कई बार नंगे पैर परिक्रमा की और श्री राधावल्लभ सम्प्रदाय को ग्रहण किया परन्तु शांति और ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु की प्राप्ति फिर भी नहीं हुई। मेरे प्रश्नों का उत्तर कोई भी नहीं दे पाया। क्या वर्णन करूँ ? जीवन के धक्कों का वर्णन कागज पर नहीं किया जा सकता। उसके बाद किसी साधु ने कहा : ''अमुक मंत्र इतने लाख जपो।'' इस प्रकार जिसने जो भी मंत्र दिया या बताया उसको तत्परता और श्रद्धापूर्वक नियम से किया परन्तु शांति फिर भी नहीं मिली।

फिर एक संत ने कहा : ''बेटा ! पूर्णिमा को गंगा-स्नान कर। जब तक मंजिल न मिल जाये तब तक पूर्णिमा के स्नान करते रहना और गंगा-महिमा का पाठ गंगा तट पर अवश्य करना।'' फिर मैंने मार्च १९९४ से पूर्णिमा का गंगा-स्नान करना प्रारम्भ कर दिया। पूर्णिमा-स्नान में कभी श्रद्धा होती कभी कम हो जाती फिर भी शिव की जटा से निकली भागीरथी गंगा को पवित्र मानकर मैं पूर्णिमा-स्नान करता रहा।

जुलाई १९९६ में मैं हरिद्वार में गंगा किनारे बैठकर आराधना करने लगा कि : ''हे गंगा माँ ! मुझे रास्ता दिखाओ... सद्गुरु को मिला दो, माँ ! कृपा करो, गंगे माँ !'' और मैं पानी के अंदर **'ॐ नमो गंगायै विश्वरूपिण्यै नारायण्यै नमो नमः।'** इस मंत्र का जाप करने लगा। उसी समय एक स्फुरणा हुई कि : ''बेटा ! आज तेरी कामना पूर्ण होगी। तू जा।'' मैं गंगा माँ की शरण से निकलकर चल दिया और सोचा कि आज जहाँ गंगा माँ ले जायेंगी वहाँ जाऊँगा। हरिद्वार बस अड्डे पर आकर मैं दिल्ली आनेवाली बस में बैठ गया। आना था मुजफ्फरनगर लेकिन मैं मुजफ्फरनगर न उतरकर गाजियाबाद उतर गया। उसके बाद मैंने सोचा : 'कहाँ जाऊँ ?' ...तो मन में विचार आया कि गाजियाबाद के रेलवे स्टेशन पर जाना चाहिए। मैं वहाँ पहुँच गया और बुक-स्टाल पर पुस्तक देखने लगा। **पत्रिकाओं के बीच 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका मुझे दिखी। मैंने तुरन्त वह 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका खरीद ली और रेलवे स्टेशन पर ही पूरी पढ़ डाली। उसमें लिखी हुई सारी बातें मेरे हृदय में जम गईं। मानों, मुझे मेरी मंजिल मिल गई हो !**

२२ जुलाई १९९६ को **'ऋषि प्रसाद'** पत्रिका पढ़कर लगा कि जब यह इतनी अच्छी है तो इसको लिखनेवाला कितना अच्छा होगा ! **'ऋषि प्रसाद'** के अंतिम पृष्ठ पर महाराजश्री के आगामी कार्यक्रम छपे थे। उनमें २८, २९ जुलाई '९६ पूर्णिमा का कार्यक्रम संत श्री आसारामजी आश्रम, रवीन्द्र रंगशाला के सामने, दिल्ली में था। अपने जीवन का उद्देश्य प्राप्त कर लेने के लिए २८ जुलाई '९६ को मैं

पूछता-पूछता आश्रम में पहुँच गया और प्रातःकाल एवं शाम का सत्संग सुना। सत्संग में मेरे प्रश्नों के उत्तर बिना पूछे ही मुझे मिल गये और मैं आनन्दित हो गया।

समय पाकर मुझे २९ जुलाई '९९ को पूज्यश्री से दीक्षा प्राप्त हो गई और मेरे जीवन के सारे सत्कर्मों का फल मुझे मिल गया। १४ वर्षों तक दुनिया के धक्के खाने के बाद भागीरथी गंगा माता के आशीर्वाद से **'ऋषि प्रसाद'** पत्रिका ने मेरा मार्गदर्शक बनकर मुझे सद्गुरु के चरणों में पहुँचा दिया। अनाथ को सद्गुरु ने अपनी शरण में लेकर एवं दीक्षा देकर प्रभु-प्राप्ति का मार्ग दिखाया, मेरा नश्वर जीवन धन्य कर दिया, क्योंकि :

लख चंदा चढ़े, चाहे सूरज चढ़े हजार।
ऐते चाँदणा न होंदा, गुरु बिन घोर अंधार॥

सद्गुरु की दीक्षा से मुझे इस प्रकार लाभ हुए हैं : (१) आत्मिक शांति प्राप्त हुई।

(२) शरीर में आध्यात्मिक आन्दोलन से जीवन में परिवर्तन हुआ।

(३) मंत्रजाप से संसार मिथ्या लगने लगा है और सद्गुरु-परमात्मा से संतुष्टि, तृप्ति और उनमें प्रीति हो गई है।

(४) शादी और संसारी सम्बन्धों में रुचि नहीं रही है अर्थात् मैंने विवाह का विचार छोड़ दिया है।

(५) काम राम में परिवर्तित होने लग गया है।

(६) सबमें उस परमात्म-चैतन्य का अंश नजर आने लगा है।

(७) संसार का अज्ञान दूर होकर शाश्वत् तत्त्व का ज्ञान होने लगा है।

(८) सांसारिक वस्तुओं की आसक्ति मिटने लगी है और सद्गुरु-परमात्मा प्यारे लगने लगे हैं।

(९) सुख को मैं दुनिया में ढूँढ़ता था परन्तु सद्गुरु ने अपने अन्दर सुख बताकर दुनिया के धक्के खाने से बचा लिया है।

(१०) सुख और दुःख में समान स्थिति होने लगी है।

(११) पूर्वजन्मों के बुरे संस्कार नष्ट होने लगे हैं और भाग्य का विकास होने लगा है।

(१२) दुःखद से दुःखद परिस्थितियों से निपटने की सामर्थ्य आ गई है।

(१३) शास्त्रों में लिखी बातों का रहस्य समझने लगा हूँ।

(१४) मेरा सारा कारोबार बन्द हो गया था लेकिन मंत्रदीक्षा के बाद दो वर्ष के अन्दर ही दिल्ली में मेरी बस चलने लगी है और मकान भी बन गया है। सद्गुरु की कृपा से सब कुछ सम्भव हो जाता है। मंत्रजाप मैंने सांसारिक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए नहीं किया और न ही कभी सद्गुरुजी से फरियाद की। सब स्वयं ही हो गया।

(१५) मंत्रजाप से न कुछ खोने का गम है और न ही संसार की कुछ वस्तु पाने की इच्छा है।

ऐसे अनेक आध्यात्मिक लाभ हैं जिनको पूर्णतः लिखना सम्भव नहीं है।

- शिवकुमार शर्मा (एडवोकेट)
जी-८, आवास नं. ४१, सेक्टर १५, रोहिणी, दिल्ली-८४.

*

ले लो शरण में गुरुवर

ले लो शरण में गुरुवर, हम दर-दर भटक न जायें।
बरबादियों के मेले, अब और लग न जायें॥
अज्ञान के अँधेरे, सारे जग में छाये।
द्वेष, बैर, कटुता-तम, इन्सान में समाये॥
बन जाओ ज्ञानज्योति, राह न भटक जायें।
यह माना कि हम अधम हैं, गुरु की न जानें भक्ति॥
हम लाख बुरे हों पर, तुम तो हो दिव्य शक्ति।
गंगा बहा दो ज्ञान की, गुलशन उजड़ न जायें॥

- बृजेश शरण सैनी,
बिलहरा, सागर (म. प्र.).

*

गुरुमंत्र का प्रभाव

मैं अटावा (राजस्थान) से जीप द्वारा श्योपुर कलां की तरफ आ रहा था। अमावस की रात्रि के ९ बजे का समय था कि तड़ाव गाँव के पास एक ट्रैक्टर से

टक्कर हो गई। टक्कर इतनी जोरदार हुई कि गाड़ी एक गड्ढे में गिरकर फिर खेतों की तरफ चल पड़ी। ड्राइवर गाड़ी से गिर पड़ा।

रात्रि का समय था। बिना ड्राइवर के गाड़ी खेतों की ओर उठती-गिरती जा रही थी। उसमें से एक लड़का गिरा और वह जीप के नीचे आ गया। उसके दोनों पैर कट गये। और लोग भी किसी तरह से गाड़ी से कूदे। उनको भी काफी चोटें लगीं।

सिर्फ मैं गाड़ी में बचा। मैं नींद में था। जैसे ही मेरी नींद खुली, मैंने गुरुमंत्र का उच्चारण किया। गाड़ी रुकी तब मैंने उतरकर देखा तो सामने कोई न था। इसके पहले गाड़ी में ही किसी इंगल पट्टी से मेरा पूरा सिर फट गया था। मेरे सारे कपड़े खून से लथपथ हो गये थे लेकिन मैं होश में था।

मैं सूटकेस उठाकर उतरा। लोग चिल्ला रहे थे : ''अरे ! मर गये... मर गये...'' सड़क से वह स्थान काफी दूर था।

अंधेरी रात में मुझे गुरुदेव की प्रेरणा से सही दिशा मिली और मैं सड़क पर आ गया। सड़क पर एक ट्रॉली मिल गई और मैं उसमें बैठकर तड़ाव गाँव गया। वहाँ से जीप करके खतोली आया।

खतोली आते ही व्यवस्था हो गई। छोटे-से गाँव में डॉक्टर मिल गया और उसने सिर में लगभग २८ टाँके लगाये और हमारे परिवार के लोगों को सूचना भिजवायी।

फिर मुझे कोटा ले गये। वहाँ डॉक्टरों ने कहा कि इस तरह के मामले में बहुत ही मुश्किल से कोई बचता है परन्तु गुरुमंत्र एवं गुरुकृपा से मैं अकाल मृत्यु के मुँह से बचा और अब बिल्कुल स्वस्थ हूँ।

पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम !

- ओम प्रकाश मित्तल
श्योपुर कलां (म. प्र.).

*

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ९२ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया जून २००० के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें।

बापू के साहित्य से सत्प्रेरणा

परम पूज्य श्री आसाराम बापूजी,

सादर प्रणाम !

ईश्वर की असीम कृपा से हमारे एरिया 'जी' ब्लॉक, सेक्टर १५, रोहिणी, दिल्ली-८५ में स्थित एक श्री सनातन धर्म मंदिर का हम प्रबन्धन एवं संचालन करते हैं।

कुछ लोग हमारे कार्य की बहुत प्रशंसा करते हैं तो कुछ लोग बहुत आलोचना भी करते हैं। बुरा भी कहते हैं, बुरे-से-बुरा भी कहते हैं।

आज से दो-तीन साल पहले अपने बारे में बहुत कटु आलोचना सुनकर एक दिन मेरा मन बहुत ही उद्विग्न था। अतएव मंदिर का कार्य छोड़ देने का पक्का मन बना रखा था। उन्हीं दिनों ईश्वर की कृपा से, आपके आशीर्वाद से आपकी एक किताब **'परम तप'** किसी मित्र के यहाँ से पढ़ने को मिली। उसमें एक किस्सा पढ़ने को मिला।

उस किस्से को पढ़ने के बाद मंदिर का कार्य छोड़ देने का मेरा विचार चला गया और आज मन की स्थिति ऐसी हो गयी है कि कोई भी व्यक्ति हमारे बारे में कुछ भी आलोचना करता रहे, कटु बोलता रहे, बुरा बोलता रहे पर अब दिल-दिमाग पर उसकी बातों का कोई असर नहीं पड़ता।

धन्य हैं ऐसे संत जिनके एक प्रेरक प्रसंग से मेरे जीवन में आई एक भारी रुकावट दूसरी तरफ लुढ़ककर चली गयी। इसी कार्य में आपके असीम

आशीर्वाद की आपसे मैं कामना करता हूँ।

- अरविन्द कुमार अग्रवाल

*

प्रगति दूत हे 'ऋषि प्रसाद' !

आलोक उरों में भरती है, नित कलुष-कालिमा हरती है।
जो कार्य सुधारक न करते, वह कार्य पत्रिका करती है ॥
दुनिया के कोने-कोने से, यह ध्वनि-प्रतिध्वनि आई है।
प्रगति दूत हे 'ऋषि प्रसाद' ! तुम्हें कोटि-कोटि बधाई है ॥
किसे पता था, इतना सब कुछ कर पाओगे?
सरल प्यार, अनगिनत हृदयों में भर पाओगे?
विस्मय है, हे सौम्य ! कि इतने अल्प समय में।
इतनी जड़ता, अन्धकार को हर पाओगे?
गली-गली, घर-घर, कुटीर में धूम मचाई है।
प्रगति दूत हे 'ऋषि प्रसाद' ! तुम्हें कोटि-कोटि बधाई है ॥
कुप्रथाएँ नष्ट करने, सामाजिक विधान में।
समाज संगठक, धार्मिक विधान में ॥
हितकारी संदेश सभी को तुम पहुँचाते।
रहन-सहन, शिष्टता खान-पान में ॥
सामाजिक बुराइयों पर भी, तुमने जय पाई है।
प्रगति दूत हे 'ऋषि प्रसाद' ! तुम्हें कोटि-कोटि बधाई है ॥
तुम्हें प्राप्त है आशिष ऋषि का उनका बल।
और प्रसारित हैं, धनपतियों के भी अंचल ॥
तुमने आशातीत सफलता जो पाई है।
यह सब आसा ऋषि के, आशिष का फल है ॥
है समवेत स्वर से, संस्कृति की शान बढ़ाई है।
प्रगति दूत हे 'ऋषि प्रसाद' ! तुम्हें कोटि-कोटि बधाई है ॥
चाटुकारिता पक्षपात से दूर रहे तुम।
शिक्षा सद्‌गुण, समता से भरपूर रहे तुम ॥
पा जाओगे लक्ष्य एक दिन, निश्चय ही प्रियवर।
यदि न सफलता के गरूर में चूर रहोगे ॥
रहे 'पथिक' फिर तो गुरु आसाराम सहाई है।
प्रगति दूत हे 'ऋषि प्रसाद' ! तुम्हें कोटि-कोटि बधाई है ॥

- पं. कमल किशोर दुबे 'पथिक',
दिल्लोद, जि. भोपाल (म. प्र.)

'यौवन सुरक्षा' पुस्तक को पढ़कर स्वामी विवेकानंद इन्टर कॉलेज, जालौन (उ. प्र.) के किशोर छात्र कहते हैं...

''पाश्चात्य जीवन-शैली तथा अश्लील फिल्मों से प्रभावित होकर जो लोग भटक गये हैं तथा गलत रास्ते पर चल रहे हैं, उन्हें सही रास्ते पर लाने के लिए **'यौवन सुरक्षा'** जैसी पुस्तकों की आवश्यकता है। यह पुस्तक हर व्यक्ति को पढ़ायी जानी चाहिए, ताकि समाज की भ्रांतियाँ दूर हों तथा उसमें नई चेतना जागे।''

- धीरेन्द्र चतुर्वेदी (कक्षा ११)

*

''जीवन का ध्येय आत्मज्ञान की प्राप्ति है और इसके लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक है, इसका ज्ञान **'यौवन सुरक्षा'** पुस्तक से होता है। इस पुस्तक को पढ़ना अपने जीवन को ऊँचे योगमार्ग की ओर ले जाना है। आज कल के भारतीय जिन्हें योगियों के देश में पैदा होने का गौरव प्राप्त है, वे भी कंगाल पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण करने में लगे हुए हैं। उन्हें सही मार्ग दिखाने के लिए यह पुस्तक आवश्यक है।''

- दीपक उपाध्याय (कक्षा १०)

*

''आश्रम द्वारा प्रकाशित **'यौवन सुरक्षा'** पुस्तक पढ़ने के बाद मैंने इसमें बताये गये कुछ नियमों का पालन करना प्रारम्भ कर दिया है। जैसे, सुबह नहाने से पूर्व शरीर को तौलिये से रगड़ना, भोजन करते समय

स्वर का ध्यान रखना आदि। इस पुस्तक में मानव समाज के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण बातें बतायी गयी हैं। प्रत्येक युवक को यह पुस्तक पढ़ना चाहिए। आज कल भारतवासियों पर पाश्चात्य संस्कृति का जो बुरा प्रभाव पड़ रहा है उसे इस पुस्तक के द्वारा रोका जा सकता है। यह पुस्तक लक्ष्य से भटके हुए युवावर्ग के लिए कुशल मार्गदर्शक तथा वरदानस्वरूप साबित हो सकती है। यह पुस्तक युवा वर्ग के लिए परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू का आशीर्वाद है।''

- सत्यम् अवस्थी (कक्षा ९)

'ऋषि प्रसाद' स्वर्णपदक प्रतियोगिता

'ऋषि प्रसाद स्वर्णपदक प्रतियोगिता' में उत्साह से संलग्न सेवाधारियों में से पहले दस जिन सेवाधारियों की सदस्य संख्या वर्त्तमान में अधिकतम चल रही है उन भाग्यशालियों के नाम निम्नानुसार हैं :

क्रम	नाम	शहर
१	श्री अतुल बालुभाई विठलाणी	राजकोट
२	श्रीमती जया कृपलानी	भोपाल
३	श्री वजुभाई ढोलरिया	सूरत
४	श्री त्रिलोक सिंह	हिसार
५	श्री संजय कुमार	चंडीगढ़
६	श्री विमल के. हिंगु	जेतपुर
७	श्री दिनेशभाई डी. जोशी	अमदावाद
८	श्री महेशचंद्र शर्मा	कलकत्ता
९	कुमारी नूतन यादव	जलगाँव
१०	किरीटभाई के. राठोड़	जेतपुर

...तो आयें... देर न करें... अभी भी समय है। अभी पूरा महीना बाकी है। आप भी इस प्रतियोगिता में सहभागी होकर दैवी कार्य में जुट जायें और आज ही अपना सेवाधारी क्रमांक और रसीद बुकें 'ऋषि प्रसाद' मुख्यालय, अमदावाद से प्राप्त करें। **कृपया ध्यान दें :** प्रतियोगिता की सभी रसीद बुकें १० जुलाई तक कार्यालय में जमा करवाना अनिवार्य है।

नोट : इस प्रतियोगिता में सेवाधारी द्वारा बनाई गयी एक आजीवन सदस्यता दो वार्षिक सदस्यता के बराबर मानी जायेगी।

आयुर्वेद की सलाह के बिना ऑपरेशन कभी न करवायें

डॉक्टरों के बारे में दो साधकों के कटु अनुभव यहाँ प्रस्तुत हैं : ''मेरी पत्नी गर्भवती थी। उसे उलटी, उबकाई एवं पेट में दर्द होने लगा तो डॉक्टर को दिखाया। डॉक्टर ने सोनोग्राफी करके हमें कहा : 'अभी तुरंत ऑपरेशन करवाओ। गर्भ ट्यूब में है और ट्यूब फट जायेगी तो दोनों जानें खतरे में पड़ जायेंगी।'

हम सूरत आश्रम आये। साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र में वैद्यराज के समक्ष सारी परिस्थिति का बयान किया। उन्होंने रोग का निदान किया। केवल गैस एवं मल-मूत्र के रुके रहने के कारण पेट में दर्द था। टबबाथ, दवा एवं अर्कपत्र-स्वेदन देते ही १०-१५ मिनट में दर्द कम हो गया एवं दो-तीन घण्टे में सब ठीक हो गया। दूसरे दिन सोनोग्राफी की रिपोर्ट देखकर वैद्यराज ने कहा : 'इस रिपोर्ट में तो गर्भ ट्यूब में है ऐसा कुछ लिखा ही नहीं है।'

हमने बताया कि डॉक्टर साहब ने स्वयं हमें ऐसा कहा था। आज भी मेरी पत्नी का स्वास्थ्य अच्छा है। शायद पैसों के लोभ में डॉक्टर ऑपरेशन करने की सलाह देते हों तो मानवता के इस व्यवसाय में कसाईपना घुस गया है, ऐसा कहना पड़ेगा।''

- देवेन्द्रकुमार शर्मा
घर नं. २१, तुकाराम बिकाजी कदम मार्ग, भाटिया चौक, मुंबई-३३.

*

''मेरी धर्मपत्नी के पेट में दर्द तथा मूत्र में रुकावट की तकलीफ थी। डॉक्टरों ने कहा कि : 'तुरंत ऑपरेशन करके मूत्रनली खोलकर देखना पड़ेगा। ऑपरेशन के दौरान आगे जैसा दिखेगा वैसा निर्णय करके ऑपरेशन में आगे बढ़ना पड़ेगा।'

हमने वैद्यराज से बात कही तो उन्होंने हमें तुरंत सूरत आश्रम बुला लिया। उन्होंने मूत्रकृच्छ रोग की चिकित्सा की तो दर्द ठीक हो गया। पेशाब भी खुलकर आने लगा। आज भी मेरी धर्मपत्नी ठीक है।

वर्षों तक मनौतियाँ मानने के बाद जो गर्भ रहा था, उसको खो बैठते, भ्रूणहत्या का घोर पाप सिर पर लेते, स्वास्थ्य और धन की कितनी सारी हानि होती ! हमारे जैसे असंख्य देशवासी कुछ

नासमझ तो कुछ कसाई वृत्ति के लोगों से शोषित होने से बचें, यही सभी से प्रार्थना है।'' *- नसवंतभाई वीरजीभाई चौधरी*

निर्मला धाम, वास कुई, मु. मढी, तह. बारडोली, जि. सूरत (गुज.).

✻

आम जनता को सलाह है कि आप किसी भी प्रकार का ऑपरेशन कराने से पहले आयुर्वेद विशेषज्ञ की सलाह अवश्य लेना। इससे शायद आप ऑपरेशन की मुसीबत, एलोपैथी दवाओं के 'साइड इफेक्ट' तथा स्वास्थ्य की एवं आर्थिक बरबादी से बच जाओगे।

कई बार ऑपरेशन करवाने के बावजूद भी रोग पूर्ण रूप से ठीक नहीं होता और फिर से वही तकलीफ शुरू हो जाती है। मरीज शारीरिक-मानसिक-आर्थिक यातनाएँ भुगतता रहता है। ये रोग कई बार आयुर्वेदिक चिकित्सा से कम खर्च में जड़-मूल से मिट जाते हैं।

कई बड़े रोगों में ऑपरेशन के बाद भी तकलीफ बढ़ती हुई दिखती है। ऑपरेशन करनेवालों की कोई गारन्टी नहीं होती। जो रोगी बिना ऑपरेशन के कम पीड़ा से जी सके ऐसा होता है, वही रोगी ऑपरेशन के बाद ज्यादा पीड़ा भुगतकर कम समय में ही मृत्यु को प्राप्त होता हुआ भी दिखता है।

आयुर्वेद में भी शल्यचिकित्सा (ऑपरेशन) को अंतिम उपचार बताया गया है। जब रोगी को औषधि-उपचार आदि चिकित्सा के बाद भी लाभ न हो तभी ऑपरेशन की सलाह दी जाती है। लेकिन आज कल तो सीधे ही ऑपरेशन करने की मानों, प्रथा ही पड़ गयी है। हालाँकि मात्र दवाएँ लेने से ही कई रोग ठीक हो जाते हैं। ऑपरेशन की कोई आवश्यकता नहीं होती।

लोग जब शीघ्र रोगमुक्त होना चाहते हैं तब एलोपैथी की शरण जाते हैं। फिर सब जगह से हैरान-परेशान होकर एवं आर्थिक रूप से बरबाद होकर आयुर्वेद की शरण में आते हैं एवं यहाँ भी अपेक्षा रखते हैं कि जल्दी अच्छे हो जायें। यदि आरंभ से ही वे आयुर्वेद के कुशल वैद्य के पास चिकित्सा करवायें तो उपरोक्त तकलीफों से बच सकते हैं एवं कम समय में अच्छा परिणाम, स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त कर सकते हैं। अतः सभी को स्वास्थ्य के संबंध में सजग-सतर्क रहना चाहिए एवं अपनी आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति का लाभ लेना चाहिए। *- वैद्यराज अमृतभाई*

साँई श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, संत श्री आसारामजी आश्रम, जहाँगीरपुरा, वरियाव रोड, सूरत।

✻

स्वास्थ्योपयोगी कुछ बातें

तुतलाना : सोते समय दाल के दाने के बराबर फिटकरी का टुकड़ा मुँह में रखकर सोयें। ऐसा नित्य करते रहने से तुतलाना ठीक हो जाता है।

मिरगी : १. दस ग्राम हींग ताबीज की तरह कपड़े में सीकर गले में पहनने से मिरगी का दौरा रुक जाता है।

२. भुनी हुई हींग, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, काला नमक समान मात्रा में पीसकर एक कप पेठे के रस में इसका एक चम्मच चूर्ण मिलाकर नित्य पीते रहने से मिरगी का दौरा आना बंद हो जाता है।

३. रेशम के धागे में २१ जायफल पिरोकर गले में पहनने से भी मिरगी में लाभ होता है।

मधुमेह : १५ बिल्वपत्र (जो शिवजी को चढ़ाते हैं) और ५ काली मिर्च पीसकर चटनी बना लें। उसे एक कप पानी में घोलकर पीने से मधुमेह (पेशाब और रक्त में शक्कर आना) ठीक हो जाता है। इसे लम्बे समय तक एक-दो साल लेने से मधुमेह स्थायी रूप से ठीक होता है।

दूध कैसे पियें : दूध के झाग बहुत लाभदायक होते हैं। इसलिये जब भी दूध पियें, उसे खूब उलट-पुलटकर, बिलोकर, झाग पैदा करके पियें। झागों का स्वाद लेकर चूसें। जितने ही ज्यादा झाग दूध में होंगे, वह दूध उतना ही लाभदायक होगा।

गठिया : छाछ में समान मात्रा में पिसी हुई सोंठ, जीरा, काली मिर्च, अजवायन, काला तथा सेंधा नमक मिलाकर एक-एक गिलास छाछ दिन में तीन बार नित्य पियें। गठिया ठीक हो जायेगी।

दीर्घायु : यदि आप लंबी जिन्दगी जीना चाहते हैं तो छोटी हर्र (हरड़े) रात को पानी में भिगो दें। पानी इतना ही डालें कि ये सोख लें। प्रातः उनको देशी घी में तलकर काँच के बर्तन में रख लें। नित्य एक-एक हरड़ सुबह-शाम दो माह तक खाते रहें। शरीर हृष्ट-पुष्ट होगा।

✻ लू, गरमी से बचने के लिये रोजाना शहतूत खायें। पेट, गुर्दे और पेशाब की जलन शहतूत खाने से दूर होती है। आँतों के घाव और यकृत ठीक होते हैं। नित्य शहतूत खाते रहने से मस्तिष्क को ताकत मिलती है।

✻ देशी घी में पान का पत्ता डालकर गर्म करें। फिर छान लें। ऐसा घी बहुत दिनों तक अच्छा रहता है।

✻ हर्र-हरीतकी-Chebulic Myrobalan ✻

सेवन-विधि : हर्र चबाकर खाने से भूख बढ़ती है। पीसकर इसकी फंकी लेने से मल साफ आता है। सेंककर खाने से त्रिदोषों को नष्ट करती है। पौष्टिक और शक्तिवर्धक रूप में खाना खाते समय खायें। जुकाम, फ्लू, पाचनशक्ति ठीक करने के लिये भोजन करने के बाद सेवन करें। **मात्रा :** ३ से ४ ग्राम।

सावधानी : गर्म प्रकृतिवाले, गर्भवती स्त्रियाँ, दुर्बल व्यक्ति

सावधानी से इसका सेवन करें। जरा भी हानि प्रतीत होने लगे तो सेवन तुरंत बंद कर दें।

❋ घंट की ध्वनि का औषध-प्रयोग ❋

सर्पदंश में : अफ्रीका निवासी घंटा बजाकर जहरीले साँप की चिकित्सा करते हैं।

क्षय में : मास्को सैनीटोरियम में घंटा की ध्वनि से क्षय ठीक करने का सफल प्रयोग चल रहा है। घंटा-ध्वनि से क्षयरोग ठीक होता है। इससे अन्य कई शारीरिक कष्ट दूर होते हैं।

प्रसव में : अभी बजा हुआ घंटा आप पानी से धो डालिये और उस पानी को उस स्त्री को पिला दीजिये जिस स्त्री को अत्यन्त प्रसव-वेदना हो रही हो और प्रसव न होता हो। फिर देखिये, एक घंटे के अन्दर ही सारी आपत्तियों को हटाकर सफलतापूर्वक प्रसव हो जाता है।

[सत्पुरुषों के वचनामृत से संकलित]

चॉकलेट का अधिक सेवन हृदयरोग को देता है आमंत्रण

आज विज्ञापन तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ यह तय करती हैं कि हमें क्या खाना चाहिए, किस तरह जीना चाहिए। 'फास्ट फूड', ठण्डे पेय तथा चॉकलेट आदि अनावश्यक वस्तुएँ खाद्य पदार्थों के नाम पर लोकप्रिय होते जा रहे हैं।

क्या आप जानते हैं कि चॉकलेट में कई ऐसी चीजें भी हैं जो शरीर को धीरे-धीरे रोगी बना सकती हैं ? प्राप्त जानकारी के अनुसार चॉकलेट का सेवन मधुमेह एवं हृदयरोग को उत्पन्न होने में सहाय करता है तथा शारीरिक चुस्ती को भी कमजोर कर देता है। यदि यह कह दिया जाय कि चॉकलेट एक मीठा जहर है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

कुछ चॉकलेटों में 'इथाइल एमीन' नामक कार्बनिक यौगिक होता है जो शरीर में पहुँचकर रक्तवाहिनियों की आंतरिक सतह पर स्थित तंत्रिकाओं को उद्दीप्त करता है। इससे हृदयजन्य रोग पैदा होते हैं।

हृदयरोग विशेषज्ञों का मानना है कि चॉकलेट के सेवन से तंत्रिका कोषों पर जो उद्दीपन होता है उससे डी. एन. ए. जीन्स सक्रिय होते हैं जिससे हृदय की धड़कने बढ़ जाती हैं। चॉकलेट के माध्यम से शरीर में प्रवेश करनेवाले रसायन पूरी तरह पच जाने तक अपना दुष्प्रभाव छोड़ते रहते हैं। अधिकांश चॉकलेटों के निर्माण में प्रयुक्त होनेवाली निकिल धातु.हृदयरोगों को बढ़ाती है।

इसके अलावा चॉकलेट के अधिक प्रयोग से दाँतों में कीड़ा लगना, पायरिया, दाँतों का टेढ़ा होना, मुख में छाले होना, स्वरभंग, गले में सूजन व जलन, पेट में कीड़े होना, मूत्र में जलन आदि अनेक रोग पैदा हो जाते हैं।

वैसे भी शरीर-स्वास्थ्य एवं आहार के नियमों के आधार पर किसी व्यक्ति को चॉकलेट की कोई आवश्यकता नहीं है। यह एक अनावश्यक वस्तु है जिसे धन बटोरनेवाली कंपनियाँ आकर्षक विज्ञापनों द्वारा आवश्यक वस्तु की तरह प्रदर्शित करके जनता को मूर्ख बनाती हैं। अतः अपने शरीर को निरोग रखने के इच्छुक लोगों को अपने पसीने की कमाई का दुरुपयोग न करके चॉकलेट जैसी अनावश्यक तथा बीमारियाँ पैदा करनेवाली वस्तुओं का दूर से ही त्याग कर देना चाहिए।

❋

मंत्रानुष्ठान साधना का सुनहरा अवसर

साधना के लिए चातुर्मास का समय श्रेष्ठ समय माना गया है। इस समयावधि में की गई साधना का अपना विशेष महत्त्व होता है। इस समय का सदुपयोग करने के लिए साधकों को मंत्रानुष्ठान एवं मौनमंदिरों में प्राप्त होनेवाली विशेष साधना-सुविधा का लाभ अवश्य लेना चाहिए।

शहर के कोलाहल भरे वातावरण से दूर शांत क्षेत्र में बने विभिन्न संत श्री आसारामजी आश्रम साधकों की इस आवश्यकता की पूर्ति में अत्यन्त सहायक सिद्ध हो रहे हैं। पवित्र आध्यात्मिक स्पंदनों से युक्त आश्रमों में मंत्रानुष्ठान तथा मौनमंदिर साधना के द्वारा अनेक साधकों को अद्भुत लाभ मिला है।

इसी बात को ध्यान में रखकर अमदावाद आश्रम में गुरुपूर्णिमा के पश्चात् चातुर्मास में मंत्रानुष्ठान हेतु आनेवाले साधकों के लिए व्यवस्था की जाएगी। इस सुअवसर का लाभ लेने के लिए आनेवाले साधक **'साधक निवास कार्यालय, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-५' से सम्पर्क करें। फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.** फोन पर सम्पर्क करने का समय : रात्रि ९ से १० बजे तक।

अमदावाद आश्रम के अलावा पंचेड़ (म. प्र.) आश्रम में भी अनुष्ठान एवं मौनमंदिर साधना का लाभ वर्षपर्यन्त लिया जा सकता है। यहाँ का शांत एवं एकांत वातावरण तथा अनुकूल जलवायु साधना हेतु विशेष लाभकारी हैं। यहाँ पर मंत्रानुष्ठान एवं मौनमंदिर साधना के लिए विशेष व्यवस्था है।

सम्पर्क : संत श्री आसारामजी आश्रम, पंचेड़, नामली, जि. रतलाम। फोन (०७४१२) ८१२६३, ८१२९१.

नई टिहरी (टिहरी गढ़वाल) : १६ से १८ मई । हिमालय की गोद में स्थित बोराड़ी स्टेडियम में त्रिदिवसीय ज्ञान-भक्ति-योगवर्षा एवं पूनम दर्शनोत्सव कार्यक्रम संपन्न हुआ । प्राचीन ऋषि-मुनियों की तपःस्थली तथा स्वामी रामतीर्थ, ऋषि दयानंद आदि महापुरुषों की इस प्रिय भूमि में ग्रीष्म ऋतु के पूर्ण यौवन में भी वातावरण में शीत ऋतु-सी शीतल वायुधारा प्रवाहित होती रही।

स्वास्थ्य के लिए उत्तम जलवायु, साधना के लिए अनुकूल आध्यात्मिक स्पंदन इस भूमि की विशेषता है । हिमाच्छादित गंगोत्री, यमुनोत्री तथा हरी-भरी झाड़ियों की चादर ओढ़े अनेक पर्वत-शृंखलाएँ सहज ही मन को आकर्षित करती हैं। इस सुरम्य प्राकृतिक छटा को देखकर इसके नियामक प्रभु की स्मृति से मन ओत-प्रोत हो जाता है।

देश-विदेशों से बड़ी संख्या में आये हुए हजारों भक्त इस प्राकृतिक दैवी वातावरण से प्रफुल्लित एवं आनंदित हुए। उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की आध्यात्मिक सत्संग-ध्यानसरिता में स्नान कर मधुर जीवन की कुंजियाँ प्राप्त कीं।

हजारों साधकों के निवास एवं हृषीकेश से आने-जाने के लिए बसों की व्यवस्था स्थानीय समिति द्वारा की गई थी । पूरे हिमालय क्षेत्र के लिए यह कार्यक्रम अभूतपूर्व रहा । अखबारों में भी इस कार्यक्रम के अभूतपूर्व होने की चर्चा रही । इसकी विशाल संख्या, शांति, स्वयं अनुशासित साधकों ने आयोजन की अमिट छाप छोड़ी । अध्यात्म-प्रेमियों का ऐसा सैलाब यहाँ पहली बार देखा गया । ज्ञान- भक्ति-योग के मर्मज्ञ तत्त्वनिष्ठ पूज्यश्री की आत्मस्पर्शी अमृतवाणी की वर्षा का यह बीजारोपण व्यर्थ नहीं जायेगा बल्कि निरंतर पल्लवित-पुष्पित होकर लोगों को प्रेरणा देता रहेगा।

हिमालय-अन्तर्गत पूरे गढ़वाल क्षेत्र के पहाड़ी भाई-बहनों ने खूब लाभ लिया । चम्बा, उत्तर काशी, पुरानी टिहरी व आस-पास के पहाड़ी क्षेत्र, कुमाऊँ क्षेत्र तथा नैनीताल क्षेत्र तक के लोग पूज्यश्री के आत्मिक अनुभव से सराबोर सान्निध्य में सराबोर हुए । अति आग्रह करके पूज्य बापू को उन्होंने मंत्रदीक्षा के लिए रिझा ही लिया, गुरुमंत्र प्राप्त कर ही लिया । दूर-दराज इलाकों से आये हुए और गढ़वाल तथा कुमाऊँ क्षेत्र के भाई-बहन भी चल पड़े इन संत के सुगम मार्ग पर, जिनकी मंत्रदीक्षा जीते-जी आत्मिक-पारमात्मिक अनुभव का द्वार खोल देती है, जिनकी शिक्षा-दीक्षा में नगद धर्म है, मरने के बाद का वायदा नहीं। 'उधार धर्म' अथवा 'मरने के बाद स्वर्ग में जाओगे...' इन कपोलकल्पित आश्वासनों से बचाकर जो जीते-जी स्वर्ग के बापों का बाप पारमात्मिक सुख का साधन सहज में सुपुर्द कर देते हैं, ऐसे संत से दीक्षा पानेवाले पुण्यात्मा अब तो मान-अपमान में सम बनानेवाली... हृदय में 'सुख-दुःख है सपना, परमात्मा है अपना...' का अमृत जतानेवाली, भगवद्प्राप्ति के सहज-सुगम साधनरूप मंत्रदीक्षा पाकर पावन हुए। पूनम व्रतधारियों ने पहाड़ी क्षेत्र में अपने गुरुभाइयों की संख्या देखकर प्रेम व प्रसन्नता छलकाई।

सो थांब सुहावन्दा जिथे मेरे संतजना ।

एकांत-अज्ञातवास के दिनों में भी पुण्यात्माओं ने पा ही लिया सत्संग, साधना व मंत्रदीक्षा का मार्ग ।

स्थानीय बुद्धिजीवियों के अनुसार : ''नई टिहरी की धरती पर अब तक दर्जनों धार्मिक, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन हुआ किन्तु यह पहला अवसर था जब टिहरी रियासत के पूर्व नरेश व वर्त्तमान सांसद महाराजा मानवेन्द्र शाह पूज्य बापू के सत्संग में आम श्रोताओं के साथ धरती पर बैठकर सद्गुरु के सत्संग में सराबोर रहे।''

लोगों के बताये अनुसार जमीन पर बैठना उनके लिए बड़ी बात थी। भावपूर्ण हृदय से माल्यार्पण करते हुए उन्होंने पूज्यश्री का अभिनंदन किया।

यहाँ के वातावरण को भक्ति व तपस्याप्रधान बताते हुए पूज्यश्री ने कहा कि : ''हे साधक ! जरा-सा अपने-आपमें गोता लगाकर तो देख ! निहाल हो जायेगा... खुशहाल हो जायेगा। आज के बदलते हुए परिवेश में भी यदि ध्येयनिष्ठ साधक इस केदारखण्ड में अनुभवी महापुरुषों के मार्गदर्शनानुसार साधना में तत्पर रहे तो अनंत जन्मों के पापों से छूटकर आत्मा-परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है, जीवत्व के संस्कार से छूटकर अपने शिवत्व को पा सकता है, अपनी ब्राह्मी स्थिति इसी जन्म

में प्राप्त कर सकता है।

ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर, कार्य रहे ना शेष।
मोह कभी ना ठग सके, इच्छा नहीं लवलेश ॥

पूज्य बापू के टिहरी एकांत निवास से केदारनाथ व बद्रीनाथ के बर्फीले पहाड़ों का दर्शन होता है। कुछ खास साधकों का साधनामय सत्र भी चलता रहा जो पूज्य बापू के निवास के निकट ही शिवलिंग एवं नवनिर्मित पिरामिड के भीतर ही पूज्यश्री के मार्गदर्शन में संपन्न हुआ। कुछ जिज्ञासु दूर पहाड़ों की चोटियों पर अलग-अलग बैठकर मौन-साधना व जप-ध्यान करते रहे और बापूजी के तपस्या एवं साधनापूर्ण परमाणुओं से लाभान्वित होते रहे। वे जिज्ञासु धनभागी हैं जो कि बापूजी को विक्षेप किये बिना, युक्तिपूर्वक दूर से ही दर्शन एवं एकांत का लाभ उठाते रहे। 'जीवन में ऐसा आत्मिक अनुभव पहली बार ही पाया...' बहुत सारे संयमी, आज्ञाकारी, संतसेवक साधकों का ऐसा अनुभव सुना गया।

*

संत श्री आसारामजी आश्रम, अमदावाद द्वारा अकालग्रस्त क्षेत्रों में राहत सेवाकार्य

हाल ही में गुजरात राज्य के अकालग्रस्त क्षेत्रों जैसे साबरकांठा जिले के कोटड़ा आदिवासी क्षेत्र (खेड़ब्रह्मा, विजयनगर, लांबडिया आदि १० गाँव), पाटण जिले के राधनपुर क्षेत्र तथा पंचमहाल जिले के लुणावाड़ा तहसील के पचास से भी ज्यादा गाँवों में अकालपीड़ित जनता की सहायता के लिये संत श्री आसारामजी आश्रम, अमदावाद तथा स्थानीय श्री योग वेदान्त सेवा समितियों द्वारा खूब तेजी से राहत सेवाकार्य किये जा रहे हैं। २५००० से भी अधिक अकालपीड़ित लोगों को हररोज अन्न, चने, सुखड़ी और गुड़ के पैकेट वितरित किये जा रहे हैं।

परम पूज्य संत श्री आसारामजी महाराज ने सूचित किया है कि: **''प्राणिमात्र में ईश्वर है। अतः इस अकालग्रस्त परिस्थिति में पीड़ित लोगों की सेवा करके हमें उस ईश्वर की पूजा करनी चाहिए।''**

दिनांक : ४ जून २००० के दिन देहरादून आश्रम का उद्घाटन पूज्यश्री के पावन करकमलों द्वारा।

कृपया नये फोन नंबर नोट कर लें : सूरत आश्रम : (०२६१) ७७२२०१, ७७२२०२. ✻ भोपाल आश्रम : (०७५५) ७४२५००, ७४२५९९.

पूज्य बापू के सत्संग-कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	समय	स्थान	संपर्क फोन
१० से १३ जून सुबह तक	रेवाड़ी (हरियाणा)	सत्संग कार्यक्रम	सुबह ९ से ११ शाम ४.३० से ६.३०	कोन्टेनर डेपो, नई अनाज मंडी के पास, रेवाड़ी।	(०१२७४) ४९७१६, ५६६४५, २२७९५.
११ से १३ जून	अंबाला (हरियाणा)	सत्संग कार्यक्रम पू. श्री नारायण साँई द्वारा		संत श्री आसारामजी आश्रम, तोपखाना, पंजोखरा साहेब, जनेतपुर, अंबाला।	(०१७१) ६७९०५८
१५ से १८ जून	अजमेर (राज.)	सत्संग कार्यक्रम	सुबह ९ से १२ शाम ५ से ७	पटेल मैदान, अजमेर।	(०१४५) ४२०३२४, ४२०१३७, ७२१३९.
२३ से २५ जून	नाथद्वारा (राज.)	सत्संग कार्यक्रम प्रथम दिन पू. श्री नारायण साँई द्वारा		हाईस्कूल खेल मैदान, फौज मौहल्ला, नाथद्वारा (राज.).	(०२९५३) ३०५०८
७ से ९ जुलाई	दिल्ली	गुरुपूर्णिमा महोत्सव		जापानी गार्डन, रोहिणी, सेक्टर-१०, दिल्ली।	५७२९३३८, ५७६४१६१.
११ से १३ जुलाई (दोपहर तक)	भोपाल (म. प्र.)	गुरुपूर्णिमा महोत्सव		संत श्री आसारामजी आश्रम, बायपास रोड, गाँधीनगर, भोपाल।	(०७५५) ७४२५००, ७४२५९९.
१५ से १७ जुलाई	अमदावाद	गुरुपूर्णिमा महोत्सव		संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-५.	(०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

पूर्णिमा दर्शन : पूनम व्रतधारियों के लिए पूनम-दर्शन सत्संग-कार्यक्रम की व्यवस्था दो जगह पर की गई है :
(१) दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश आदि के साधकों के लिए १३ जून सुबह में रेवाड़ी (हरियाणा) में।
(२) गुजरात, महाराष्ट्र एवं अन्य प्रांतों के साधकों के लिए १५ से १८ जून के कार्यक्रम, अजमेर (राजस्थान) में।
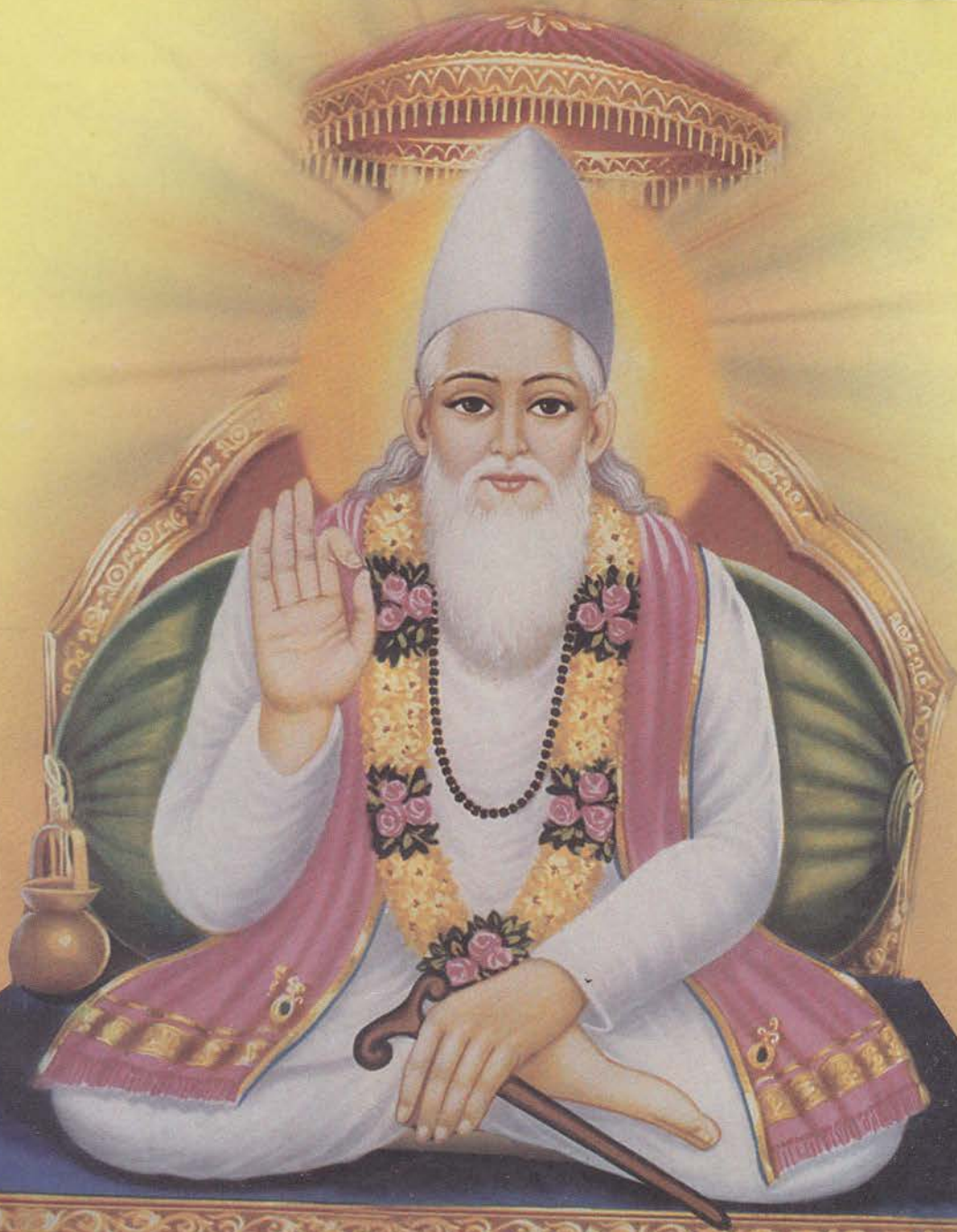
कबीर जयंती १६ जून २०००

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सिर दीजे सद्गुरु मिले, तो भी सस्ता जान ॥

सद्गुरु मेरा सूरमा, करे शब्द की चोट।
मारे गोला प्रेम का, हरे भरम की कोट ॥

POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH. POSTING FROM MUMBAI 9th & 10th OF EVERY MONTH. POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY M

DELHI REGD. NO. DL-11513/2000 PSO LIC. NO.-U(C)
R.N.I. NO. 48873/91 W.P.P LIC. NO. 207 GAMC/ 11
BYCULLA STG. W.P.P. LIC. NO. 236 REGD NO. TECH/47 83

हिमालय को चरणरज से पुनित कर दिया, आध्यात्मिक महक से सुरभित कर दिया। भक्तों को निगाहों से प्यालियाँ पिलाकर, रोम-रोम उनका पुलकित कर दिय
हिमालय की बर्फीली चोटियों के बीच बसे नई टिहरी में ऐसा सत्संग-महायज्ञ और ऐसी ऊँचाई पर इतने हजारों हजारों सत्संगी श्रोता... 'न भूतो न भविष्यति

जो मजा खिलाने में है, वह आप खाने में नहीं...

गोधरा (गुज.) के अकालग्रस्त इलाकों में हररोज २५००० से भी अधिक अकाल पीड़ितों की राहत सेवाकार्य में रत संत श्री आसारामजी आश्रम के साधकगण।